चन्दामामा
जून १९७८
Rs 1.25

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

इस महीने की बेताल कथा "सन्यासी का वर" है। इस दुनिया में कई स्वार्थी पाये जाते हैं। कुछ लोग अत्यंत उदार स्वभाव के प्रतीत होते हैं, मगर समाज के लोग सरलतापूर्वक समझ नहीं पाते कि ऐसे लोगों में भी स्वार्थ छिपा होता है। कौओं को मारकर गीधों को खिलाने की रीति में वे जनता का शोषण कर जो धन कमाते हैं, उसी से धर्मशालाएँ और प्याऊ चलाकर महान दाता के रूप में यश प्राप्त करते हैं। ऐसे लोगों का स्वार्थ प्रकट नहीं होता। यह बात इस छोटी सी कहानी में स्पष्ट रूप से चित्रित है।

वर्ष : ३० जून १९७८ अंक : १०

एक प्रति : १-२५ :: वार्षिक चन्दा : १५-००

अमर वाणी

य द्यपि प्रतिपत्तिस्ते
दैवी चापि तयोर्मतं
तथा व्युपेक्षणीयं ते
न मेत दपि रोचते ॥ १ ॥

[जो कुछ होता है, उसे तुम ईश्वर का कार्य मानते हो, यह मुझे ठीक नहीं जंचता।]

विक्लबो, वीर्यहीनो यः
न दैव मनुवर्तते,
वीरा स्संगावितात्मानो
न दैवं पर्युपासते ॥ २ ॥

[जो पराक्रमी नहीं, निर्वीर्य है, वही ईश्वर पर अपना भार डालता है। मगर बुद्धिमान और पराक्रमी अपना कार्य स्वयं साधता है, ईश्वर पर नहीं छोड़ता।]

दैवं पुरुष कारेण
य स्समर्थः प्रबाधितुम्
न दैवेन विपन्नार्थः
पुरुष स्सो वसीदति ॥ ३ ॥

[पुरुषार्थ के कारण जो ईश्वर का तिरस्कार करता है, वह उनसे डरकर दुखी नहीं होता।]

काकोलूकीयम

[५९]

रक्ताक्षी बोलनेवाली गुफा की कहानी सुनाकर अपने अनुचरों के साथ दूसरे पहाड़ पर चला गया और वहाँ पर उसने अपनी सुरक्षा का उचित प्रबंध कर लिया।

रक्ताक्षी के चले जाने पर स्थिरजीवी बड़ा खुश हुआ, वह अपने मन में सोचने लगा–"रक्ताक्षी का चला जाना बड़ा अच्छा हुआ। वह एक भविष्य द्रष्टा मंत्री है। बाक़ी लोग मूर्ख हैं। मेरी योजना को वही एक बिगाड़ सकता था, बाक़ी लोग नहीं। अब मैं निश्चय ही इस क़िले के साथ राजा तथा मंत्रियों का सर्वनाश कर सकता हूँ। दूरदृष्टि रखनेवाले मंत्रियों को खोकर मूर्खों की सलाह माननेवाले राजा का ज़रूर पतन होता है!"

समय पाकर गुफा को जलाने और उसमें निवास करने वाले उल्लुओं का अंत करने के ख्याल से स्थिरजीवी जंगल से सूखी लकड़ियाँ ले आया और दुर्ग के अन्दर अपनी गुफा में रख लिया। उसके इस कार्य पर राजा, मूर्ख मंत्री या उनके अनुचरों ने ध्यान नहीं दिया, क्योंकि स्थिरजीवी की मैत्री के प्रति उनका अपार विश्वास था।

सारे क़िले को जलाने के लिए आवश्यक लकड़ियाँ इकट्ठा करने के बाद एक दिन सवेरे जब कि उल्लू सब सो रहे थे, स्थिरजीवी उड़कर चला गया और मेघवर्ण से बोला–"महाराज! मैं ने दुश्मन के क़िले को जलाने के लिए सारी तैयारी कर रखी है। आप और आप के अनुचर जलनेवाली एक एक लकड़ी लाकर मेरे घोंसले पर डाल दीजिए, उस में सूखी लकड़ियाँ भरी पड़ी हैं। आपके सारे शत्रु आग की लपटों में फंस कर मर जायेंगे।"

ये बातें सुन मेघ वर्ण बड़ा खुश हुआ और बोला–"सुनो, तुम अपनी सारी कहानी विस्तार के साथ सुनाओ। हम बहुत समय बाद मिल रहे हैं।"

"महाराज, यह कथनी का वक़्त नहीं है, करनी का है। दुश्मन के भेदिये मेरा यहाँ आना भांप कर मेरी योजना को भंग करके उल्लुओं को बचाने का उपाय कर सकते हैं। इसलिए इस मौक़े का हम लाभ न उठायेंगे तो फिर शायद ऐसा मौक़ा हाथ न लगे। आप अपने सारे शत्रुओं का संहार करके विजयी होकर जब लौट आवेंगे, तब आराम से सारी कहानी सुन सकते हैं।" स्थिरजीवी ने समझाया।

मेघवर्ण और उसके अनुचरों ने एक जलते तिनके को चोंच में दबाये उल्लुओं की गुफा तक पहुँचे, और सूखी लकड़ियों से ढके स्थिर जीवी के घोंसले पर गिरा दिये। लकड़ियाँ जल उठीं, उन लपटों में जल-भुनकर सारे उल्लू मर गये।

इसके बाद मेघवर्ण ने आपने सिंहासन पर बैठ कर स्थिरजीवी से पूछा–"सुनो भाई, अब तुम अपने अनुभव सुनाओ।"

स्थिरजीवी ने आपना वृत्तांत सुनाया। मेघवर्ण ने पूछा–"मुझे इस बात का आश्चर्य होता है कि तुम प्रति दिन उल्लुओं के राजा के सामने कैसे प्रणाम कर पाये?"

"महाराज! कार्य को सफल बनाने के लिए ऐसे अनेक कार्य करने पड़ते हैं। अर्जुन जैसे वीर को चोली पहननी पड़ी, भीमसेन ने रसोई बनाई। युधिष्ठिर एक गरीब ब्राह्मण बन बैठा। नकुल और सहदेव ने गायें चराईं। द्रौपदी ने परिचारिका का कार्य किया।" स्थिरजीवी ने समझाया।

इस पर मेघवर्ण ने कहा–"स्थिरजीवी, तुमने असिधारा व्रत किया है!"

"इस में संदेह क्या रहा? मगर रक्ताक्षी के चले जाने पर मेरा काम सरल हो गया। बाक़ी लोग महान मूर्ख थे। ऐसे

लोगों को दगा देना बड़ा आसान है! अगर आप मूर्खों की प्रशंसा कीजिए, पेटुओं को खिलाइये : लोभियों को पुरस्कार दीजिए, गरीबों को उधार दीजिए, विद्वानों को पुस्तकें प्रदान कीजिए और राजाओं के प्रति विनम्रता दिखाइयेगा तो आप का काम बन जाएगा। मगर थोड़े समय के लिए आप को उन मूर्खों के सामने दब्बू बन कर रहना पड़ेगा जैसे मंदविसर्प नामक सांप ने मेंढकों को अपनी पीठ पर ढोया था।" स्थिरजीवी ने समझाया।

"वह कैसी कहानी है?" मेघवर्ण ने पूछा। इस पर स्थिरजीवी ने समझाया:

मंदविसर्प नामक सांप जब बूढ़ा हो गया, तब वह इस चिंता में डूब गया कि वह अब कैसे जीवे? आखिर वह मेंड़कों के एक तालब के निकट पहुँचा और चिंता मग्न रहने का अभिनय किया। इसे देख एक मेंढक तालाब के किनारे आया। उसने सांप से पूछा—"मामाजी! आज आप शिकार खेलने क्यों नहीं गये?"

सांप ने बताया—"बेटा, मुझ जैसे अभागे के मन में खाने की चिंता कहाँ रहेगी? कल रात को शिकार की खोज में जाकर मैंने एक मेंढ़क को देखा और झपटकर उसे पकड़ने को हुआ। वह उछल कर तालाब में कूद पड़ा। वहाँ पर कुछ ब्राह्मण लोग मंत्र-पठन कर रहे थे। मैं ने एक बालक के पैर को देखा। मेरी दृष्टि मंद थी। उसे मेंढ़क समझकर डस बैठा। वह बालक उसी वक्त मर गया। उसके पिता ने मुझे शाप दिया—"तुम इस अपराध में अपनी सारी ज़िंदगी मेंढ़कों को अपनी पीठ पर ढोते रह जाओ! इसीलिए मैं तुम लोगों को ढोकर अपने शाप से विमुक्ति पाने के लिए यहाँ पर आया हूँ।"

यह खबर सारे मेंढ़कों तक पहुँची। वे सब खुशी के साथ सांप की पीठ पर चढ़ कर सवार करने आये। सबसे आगे फण के पास मेंढ़कों का राजा जालपाद, उसके पीछे मंत्री तथा मंत्रीयों के पीछे अन्य ओहदेवाले मेंढक क़तार में बैठ गये।

१९७. असाधारण वीर

संसार की प्रथम सभ्यता मानी जानेवाली सुमेरियन सभ्यता पर ई. पू. २००० के पश्चात बाबिलोनियनों ने विजय प्राप्त की। इसके ३०० वर्ष बाद "कासैट" जाति के लोगों ने बाबिलोनियनों को हराकर ६०० वर्ष शासन किया। इसके बाद पहले जो असीरियन बाबिलोनियनों के अधीन थे, उन लोगों ने कासैटों को जीतकर अपने एक साम्राज्य की स्थापना की।

असीरियन वीर क्रूर भी थे। असीरियन साम्राज्य का विस्तार करनेवाले द्वितीय सार्गाफ़ जैसे राजा महावीरों की श्रेणी में गिने जाते हैं। उनमें अंतिम राजा असुर बनिपाल है। इसने ई. पू. ६६८ से ६२६ तक शासन किया। उसके आक्रमणों से घबराकर कई राजाओं ने अपनी पुत्रियों को उसकी रखेलियों के रूप में सौंप दिया। वह लड़ाइयों में सदा आगे रहता था। (इस चित्र में उसका शिकार खेलने जाना चित्रित है।) इसके बाद १४ वर्षों में असीरिया साम्राज्य का पतन हो गया।

माया सरोवर

[२९]

[सिद्ध साधक को जब पता चला कि जयशील को माया सरोवरेश्वर अपने साथ ले जा रहा है, तब वह रवाना होने को हुआ, तभी उसे जलवृक राक्षसों का समाचार मिला। इस पर राजा कनकाक्ष तथा सिद्ध साधक चल पड़े, उन्हें जलवृक राक्षसों के साथ संघर्ष करनेवाले देवशर्मा तथा अन्य लोग दिखाई दिये। बाद...]

नर भक्षी लोग अपनी भूख मिटाने के लिए जलवृक राक्षसों में से कुछ लोगों को पकड़ने के उत्साह में उनके पीछे दौड़ रहे थे। पर उन लोगों ने इस बात पर ध्यान न दिया कि राक्षस उन्हें किस दिशा में ले जा रहे हैं। मगर उस वक़्त दो जलवृक राक्षस एक घने वृक्ष की डालों में छिपे रहकर यह सारा दृश्य देख रहे थे। वे लोग अपने राजा जलवृक नाथ के आदेश पर सवेरे से उस प्रदेश में अपने शत्रुओं का पता लगाने के वास्ते पहरा दे रहे थे।

पेड़ पर स्थित जलवृक राक्षसों में से एक अपने समीप के साथी से बोला—"अबे, सुनो! हमारे राजा को दुश्मन की ताक़त का कुछ पता नहीं है। इसके पहले सरोवर में जो लड़ाई हुई थी, उसमें हमने उस माया सरोवर के राजा के सेवकों को

मार भगाया है, लेकिन अब ऐसा लगता है कि उनकी सहायता के लिए थोड़े लोग और आगे आ रहे हैं। बताओ, अब क्या किया जाय?"

दूसरा जलवृक का ध्यान और कहीं था। उसकी दृष्टि माया सरोवर की ओर भागनेवाले अपनी जाति के लोगों तथा उनका पीछा करनेवाले नर भक्षकों पर केंद्रित थी, उन लोगों से सटकर थोड़ी दूर बैशाखी के सहारे लंगड़ाते चलनेवाले हिरण्यपुर के सेनापति के पुत्र मंगलवर्मा को भी वह अत्यंत विस्मय के साथ देखने लगा। एक जलवृक ने अपने साथी को मंगलवर्मा की ओर इशारा करके कहा–

"अबे, सुनो! इसे ले जाकर हम अगर हमारे राजा के सामने हाज़िर कर दे तो कैसा होगा? इसके जरिये हम इस बात का पता लगा सकते हैं कि अभी अभी जंगल में जो राजा आये हैं, उनके साथ कितनी सेना है?"

"सो तो ठीक है! मगर दो दलों में बंटकर माया सरोवर की ओर बढ़नेवाले दुश्मन की बात क्या होगी? उनकी गतिविधि का पता लगाकर हमारे राजा को पहले ही सावधान नहीं करना है?" दूसरे जलवृक ने कहा।

"यह काम तुम देख लो! वे लोग माया सरोवर की ओर जा रहे हैं। इसमें कोई अज्ञात रहस्य भी तो नहीं है। मैं इस लंगड़े को अपने कंधे पर उठाकर ले चलूंगा और हमारे राजा के हाथ सौंप दूंगा।" यों कहकर पहला जलवृक पेड़ की डालों में से उतर पड़ा और मंगलवर्मा के पीछे चलने लगा।

मंगलवर्मा अपने ऊपर होनेवाले खतरे को भांपने की स्थिति में न था, पैदल चल सकनेवाले लोग तथा घुड़ सवार भी जल्दबाजी में उसकी बात भूलकर माया सरोवर की ओर जा रहे थे। इसलिए वह तेजी के साथ चल न सकने की हालत में पीछे रह गया था। जहाँ तक हो सके

जल्दी सरोवर तक पहुँचकर उसे भी जलवृक राक्षसों के साथ होनेवाली लड़ाई में भाग लेना होगा। कोई मनुष्य वीर है अथवा नहीं, इसका निर्णय पैर और तलवार नहीं, बल्कि साहस करनेवाला है।

मंगलवर्मा यों सोचते आगे बढ़ा चला जा रहा था, पीछे कोई आहट हुई, उसने सर घुमाकर पीछे की ओर देखा। जलवृक राक्षस जल्दबाजी में आकर उसे पकड़ने को हुआ, पर उसका पैर फिसल कर एक दरार में फंस गया जिससे उसका पत्थरवाला गदा हाथ से छूटकर दूर जा गिरा। उसने अपना पैर बाहर निकालने की पूरी कोशिश की, किंतु इस प्रयत्न में उसके पैर में मोच आ गई।

जलवृक राक्षस पीड़ा के मारे जोर से चिल्ला उठा–"हे जलवृक नाथ! तुम्हीं बचाओ।"

मंगलवर्मा समझ गया कि वह रत्ती भर में ख़तरे से बच गया। तब वह जलवृक के निकट पहुँचा, ऊँचे स्वर में बोला–"अबे, तुमने मुझे पकड़ने जाकर अपना पैर नाहक़ तुड़वा लिया। तुम्हें सही सबक़ मिल गया है। बस, इस वक़्त तुम्हें इलाज की ज़रूरत है। कहीं रहनेवाला तुम्हारा राजा जलवृक नाथ तुम्हारी कोई मदद न कर पायेगा। इसके पूर्व ही तुम्हारे जल राक्षसों ने सरोवरेश्वर के महलों पर हमला कर दिया था न? उसमें कौन जीत गये? तुम सच बताओगे तो संजीवनी जैसी जड़ी-बूटियों से तुम्हारे टूटे पैर में पट्टी बांध कर तुम्हें चलने लायक़ बना दूंगा। तुम बच जाओगे। बताओ, हमारी मदद करने के लिए तैयार हो या नहीं?"

ये शब्द सुनकर जलवृक कराहते हुए जवाब देने को था, तभी पेड़ की डालों में छिपे जलवृक का साथी अपना गदा उठाकर चिल्ला उठा–"अरे माया सरोवरेश्वर के सेवक! मैं तुम्हें इसी क्षण इस दुनिया से विदा करूँगा।" यों चिल्लाते दौड़ा-दौड़ा आने लगा।

मंगलवर्मा ने खतरा भांपकर अपनी बैसाखीवाली लाठी की मूठ को ऊपर खींचा। पल भर में चकाचौंध करनेवाली पैनी तलवार बाहर निकल आई। उसने पैर तुड़वाये जलवृक राक्षस के कंठ पर तलवार की नोक टिकायी, तब अपनी ओर बढ़नेवाले दूसरे जलवृक राक्षस से कहा—"अरे दुष्ट! सुनो, मैं जब एक से तीन तक की गिनती करूँगा, तब तक तुम अपने गदे को दूर फेंककर घुटनों के बल पर रेंगते मेरे समीप आ जाओ। ऐसा नहीं करोगे तो इसी वक्त तुम्हारे दोस्त की गर्दन धरती पर लोट जाएगी, इसके बाद तुम्हारी बारी आएगी! सुनो, एक, दो...।"

मंगलवर्मा के मुँह से तीन के निकलने के पूर्व ही जलवृक ने गदा दूर फेंक दिया, घुटनों पर बैठकर कांपते हुए बोला—"मैं तुम्हारी अधीनता को स्वीकार करता हूँ। मेरे दोस्त को मत मारो। उसे जान के साथ छोड़ दो।"

"अबे कमबख्त जल भेड़िये! तुम्हारी मित्रता का धर्म प्रशंसनीय है! मेरे साथ चलो, तुम्हें औषधी के पत्र दिखा देता हूँ।" ये शब्द कहकर मंगलवर्मा निकट की झाड़ियों की ओर बढ़ा।

मंगलवर्मा ने बड़ी सावधानी से जांच करके थोड़े से पके पत्ते और कुछ कोंपलें तोड़कर उन्हें हथेली पर मर्दन किया, एक ढेला सा बनाकर जलवृक के हाथ देकर बोला—"अबे, सुनो! यह औषध तुम अपने दोस्त के घुटने पर लगाकर पट्टी बांध दो। उसे कम से कम बारह घंटों तक उस जगह से न हिलना चाहिए। तभी जाकर यह दवा काम करेगी। अगर तुमने ऐसा न किया तो घुटने तक उसका पैर काट देना पड़ेगा।"

ये बातें सुन दोनों जलवृक राक्षसों के चेहरों पर मायूसी छा गई। मंगलवर्मा यह सोचते आगे बढ़ा कि ये दोनों जलवृक जंगल में किसी खास काम पर लगे हुए हैं और वे सच बताने की हालत में नहीं

हैं। मंगलवर्मा ने इसके पूर्व माया सरोवर में अपना थोड़ा समय बिताया था। इसलिए वह माया सरोवर तक पहुँचने का निकटवाला रास्ता जानता था। मगर बैसाखी के बल पर ऊबड़-खाबड़ रास्ते पर चलना उसके लिए कठिन मालूम हो रहा था।

मंगलवर्मा यों लंगड़ाते चार-पाँच मिनट तक चल पाया था, तभी एक ऊँचे वृक्ष पर से किसी ने उसे पुकारा—"मंगलवर्मा!"

मंगलवर्मा ने सोचा कि यह किसी वृक्ष-पिशाच की पुकार होगी, उसने सर उठाकर देखा। एक विशाल वृक्ष की डालों पर फैली जंगली लताओं में फंसा हुआ कोई व्यक्ति उसे दिखाई दिया। वह और कोई न था; माया सरोवरेश्वर के हंसोंवाले रथ का सारथी था। रथ जब उलट गया, तब वह उसमें से खिसककर पेड़ पर फैली लताओं में फंस गया जिससे वह मरते-मरते बच गया था।

"ओह! तुम बच गये हो! बड़ी खुशी की बात है! नीचे उतर आने के लिए क्या तुम्हें किसी डाल का सहारा नहीं मिला?" मंगलवर्मा ने पूछा।

हंसों के रथ का सारथी स्वीकृति सूचक सर हिलाकर बोला—"वर्मा, धीरे से बोलो, यम दूत जैसा एक व्यक्ति भयंकर नर वानर पर सवार हो इसी रास्ते पर आ रहा है। उसके साथ थोड़े सैनिक भी हैं। मैं समझता हूँ कि ये लोग और

कोई नये नहीं हैं; हमारे दुश्मन जयशील और सिद्ध साधक होंगे।"

ये बातें सुनने पर मंगलवर्मा का उत्साह उमड़ पड़ा। उसने सोचा कि उस दल में वैद्यदेव कहे जानेवाले देवशर्मा भी होंगे। इसलिए उनके साथ मिलकर जल्द ही वह माया सरोवर तक पहुँच सकता है।

"अजी, सुनो! इस वक़्त ये लोग हमारे दुश्मन नहीं। मगर मैं यह बात ठीक से नहीं जानता कि ये हमारे मित्र हैं या नहीं। मुझे अभी अभी पता चला है कि माया सरोवरेश्वर जयशील नामक व्यक्ति को पकड़कर सरोवर की ओर चले गये हैं। उन लोगों में हमारे हितैषी वैद्यदेव भी हैं। मैं तो लंगड़ा ठहरा। पेड़ पर चढ़ नहीं सकता। तुम उतर नहीं सकते। इसलिए तालियाँ बजाकर उन लोगों को यहाँ पर बुलाओ।" मंगलवर्मा ने सुझाया।

रथ सारथी को जब पता चला कि नर वानर पर सवार हुए व्यक्ति के साथ वैद्यदेव भी हैं, तब उसकी जान में जान आ गई। यदि वह थोड़े समय तक इसी प्रकार पेड़ की डालों में फंसा रहता तो कोई नर भक्षी या जलवृक राक्षस उसका अंत कर देते।

यों विचार करके रथ सारथी ने थोड़ी दूर पर जानेवाले सिद्ध साधक, राजा कनकाक्ष तथा उसके अनुचरों को लक्ष्य करके ऊँचे स्वर में पुकारा—"महाशयो! मुझे बचाइये! मैं यहाँ पर पेड़ की ऊँची डाल पर जंगली लताओं में फंस गया हूँ।"

उस पुकार को सब से पहले अपने तेज कानों से नर वानर ने सुन लिया। फिर क्या था अचानक वह रुक गया, सर उठाकर ऊपर देखते हुए अपने कंधे पर बैठे सिद्ध साधक को इशारा किया। इस बीच रथ सारथी एक और बार चिल्ला उठा।

इस बार सब लोगों ने उसकी पुकार को स्पष्ट सुन लिया। देवशर्मा ने आगे बढ़कर कहा—"यह पुकार माया सरोवरेश्वर के रथ सारथी की प्रतीत होती है। वह

हंसोंवाले रथ पर से इसी प्रदेश में गिर गया था।"

"वाह! मैं उसे पकड़ लूंगा। उसके मालिक के सभी रहस्यों का पता उसी के मुंह से लगा लूंगा। जयशील के दिखाई देने पर इन सबको पेड़ों से बांधकर महा काल की बलि चढ़ाऊंगा।" यों कहते सिद्ध साधक ने नर वानर को जोर से हांक दिया।

नर वानर तेजी से दौड़ पड़ा और रथ सारथीवाले पेड़ के नीचे आ रुका। इस पर मंगलवर्मा ने कहा–"सिद्ध साधक! पेड़ की डालों में फंसे हमारे साथी को तुम्हें नीचे उतारना होगा! बताओ, यह कैसे संभव होगा?"

सिद्ध साधक चिल्ला उठा–"जय महा काल की!" फिर बोला–"यह सब मुझे आश्चर्य जनक मालूम होता है। माया सरोवरेश्वर न केवल राजा कनकाक्ष के बच्चों का अपहरण करके ले गया, बल्कि अब मेरे मित्र जयशील को भी पकड़ ले गया है। उस दुष्ट से परिचित आप लोग ऐसी बातें कर रहे हैं कि वह हमारा शत्रु नहीं बल्कि मित्र है। यह कैसे हो सकता है?"

देवशर्मा ने सिद्ध साधक को शांत करते हुए कहा–"सिद्ध साधक! इस वक्त हमारे लिए तथा माया सरोवरेश्वर के लिए भी खतरनाक दुश्मन सरोवर में एक और स्थान पर निवास करनेवाले जलवृक

राक्षस हैं? हम सब मिलकर उनका सर्वनाश नहीं करेंगे, तो हम राजा कनकाक्ष के बच्चों को बचा न पायेंगे। अब मेरा अनुमान है कि इस वक़्त सरोवर जलवृक राक्षसों के अधीन है।" इस बीच राजा कनकाक्ष भी अपने सैनिकों के साथ वहाँ पर आ पहुँचे।

"महाशयो, मुझे बचाइये! एक बहुत ही बड़ा अजगर डालों पर रेंगते मुझे निगलने के लिए मेरी तरफ़ बढ़ा चला आ रहा है।" इन शब्दों के साथ रथ सारथी डर के मारे चिल्ला उठा।

दूसरे ही क्षण सिद्ध साधक ने नर वानर की पीठ पर प्रहार किया, अपने हाथ का इशारा करके आदेश दिया–"हे नर वानर! उस पेड़ की डालों में जंगली लताओं में फंसे हुए व्यक्ति को नीचे उतार ले आओ।"

तत्काल नर वानर बिजली की गति के साथ ऊँची डालों पर पहुँचा, एक हाथ से रथ सारथी के निकट पहुँचनेवाले अजगर को कसकर पकड़ लिया, दूसरे हाथ से रथ सारथी को जंगली लताओं से बाहर खींच डाला। रथ सारथी नर वानर को देख आपाद मस्तक कांप उठा और एक ज़बर्दस्त डाल पकड़कर बोला–"अब मुझे छोड़ दो। मैं नीचे उतर सकता हूँ।"

इसी वक़्त हठात् जलवृक राक्षसों का एक दल पत्थर के गदे उठाये वहाँ पर आ पहुँचा और "जलवृक नाथ की जय!" पुकारते उन पर टूट पड़ा।

जलवृक राक्षसों में एक व्यक्ति गैंड़े पर सवार था। वह तेजी के साथ गदा हिलाते चेतावनी देने लगा–"सुनो, हमारे दुश्मनों में से एक भी प्राणों के साथ भाग न जायें।"

पेड़ की डालों पर से नर वानर ने यह दृश्य देखा, वह इस तरह गरज उठा जिससे सारा जंगल गूँज उठे, तब अपने हाथ के अजगर को चाबूक की भांति झाड़कर ऊपर से गैंड़े पर सवार जलवृक राक्षस पर कूद पड़ा।

(अगले अंक में समाप्त)

सन्यासी का वर

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया, पेड़ से शव उत्तार कर कंधे पर डाल सदा की भांति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा– "राजन, कहा जाता है कि पात्रोचित दान करना चाहिए: लेकिन कभी कभी योग्य से योग्य व्यक्ति भी दान से वंचित रह जाते हैं। इसके उदाहरण स्वरूप में आप को मणिगुप्त की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये।"

बेताल कहानी यों सुनाने लगा: प्राचीन काल में बड़ी सिद्धियाँ रखनेवाला एक सन्यासी अपने शिष्य को साथ ले एक नगर में आ पहुँचा। उस नगर में मणिगुप्त नामक एक धनवान निवास करता था। उसे दान कर्ण नामक उपाधि प्राप्त थी। सन्यासी एक दिन मणिगुप्त का आतिथ्य स्वीकार करने उसके घर पहुँचा।

बेताल कथाएं

मणिगुप्त के महल के सामने दान पाने के लिए हजारों गरीब क़तार बांध कर खड़े थे। मणिगुप्त के पोते प्रत्येक व्यक्ति को धन दे रहे थे।

उस दिन सन्यासी ने मणिगुप्त का आतिथ्य स्वीकार कर लिया, चलते वक़्त बोला—"मणिगुप्त, मैं तुम्हारे आतिथ्य से बड़ा प्रसन्न हूँ। तुम्हारी दानशीलता को मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है। तुम कोई वर मांग लो। लेकिन तुम जो वर मांगोगे, वह निर्मल विचार का हो तो वह अवश्य सफल होगा, वरना नहीं।"

मणिगुप्त ने विनयपूर्वक निवेदन किया—"महात्मा! मुझे ऐसा वरदान दीजिए जिस से मुझे अपनी ज़िंदगी भर लगातार दान देने के लिए अटूट संपत्ति प्राप्त हो।"

सन्यासी मुस्कुरा उठा। सिर हिला कर अपने शिष्य के साथ चल पड़ा।

रास्ते में शिश्य ने सन्यासी से पूछा—"गुरुदेव! आप ने मणिगुप्त को जो वरदान दिया है, क्या वह सफल होगा?"

"कभी नहीं!" सन्यासी ने उत्तर दिया। इस के थोड़े दिन बाद मणिगुप्त की आर्थिक स्थिति डँवाडोल हो गई, और वह अपना सर्वस्व खो बैठा। तब से उसने दान देना बंद किया।

बेताल ने यह कहानी सुना कर पूछा—"राजन, सन्यासी का वरदान क्यों सफल न हुआ? क्या वे सचमुच वरदान देने की सामर्थ्य नहीं रखते थे? इस संदेह का समाधान जानते हुए भी न देंगे तो आप का सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इस पर विक्रमार्क ने कहा—"मणिगुप्त अगर निर्मल हृदय से वर मांगना चाहता तो उसे सन्यासी ऐसा वर दे जिस से उसके नगर में कोई गरीब न रहे! परंतु एक दाता के रूप में उसका यश और धन शाश्वत रूप से रहने की कामना निर्मल हृदय की नहीं मानी जा सकती।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

बलिदान

श्रीपुर से निकलकर गोविंद अपने कुत्ते के साथ एक पहाड़ी प्रदेश से गुज़र रहा था, उसने रास्ते में एक विचित्र घटना देखी। थोड़े पहाड़ी जाति के लोग डफली और सीटी बजाते उसके सामने से निकले। भीड़ के बीच भैंसों की गाड़ी पर एक खंभे से एक आदमी को बांध दिया गया था। उसके माथे पर कुंकुम की बड़ी बिंदी लगाई गई थी। गले में फूलों की माला डाल उसे बलि देने ले जा रहे थे। उसके चेहरे पर मौत की छाया झलक रही थी। उस पर गोविंद को दया आ गई। वह जानता था कि जंगली जाति के लोगों के रिवाज़ बड़े ही अमानवीय होते हैं।

गोविंद पल भर सोचता रहा। फिर भीड़ के पीछे चलनेवाली एक बूढ़ी से उसने इसका कारण पूछा।

बूढ़ी थोड़ी दूर पर स्थित एक बस्ती की ओर इशारा करके बोली—"वह सामने जो दिखाई दे रही है, वही हमारी बस्ती है। इस पहाड़ के छोर पर शाकिनी माई का मंदिर है। चार साल पहले वह माई यहाँ पर प्रकट हो गई है। उनका आदेश हुआ है कि हर साल माई को एक आदमी और दो भैंसों की बलि दी जाय! शाकिनी माई बड़ी महिमा रखती हैं। पिछले साल मनुष्य की बलि न दी गई है जिससे वक़्त पर बरसात न हुई, फ़सल न होने के कारण कई लोग मर गये। रामधन ने एक बकरे की बलि देने की मनौती की, लेकिन उसने अपनी मनौती पूरी नहीं की। इस वजह से वह खून उगलकर मर गया है। तुम वहाँ जाकर खुद देख लो, भैरव खुद बलि देनेवाले हैं।" इस पर गोविंद ने पूछा—"सुनो नानी, क्या उस आदमी के

जगन्नाथ शर्मा

कोई माँ-बाप नहीं हैं? उसकी बलि देने पर क्या रोने-धोनेवाला कोई नहीं है?"

"वाह, तुम यह क्या कहते हो? कोई रोयेगा ही क्यों? वह मेरा ही बेटा है। उसे किस बात की फ़िक्र है? शाकिनी माई उसको सीधे स्वर्ग में भेज देंगी।" बूढ़ी ने खुशी से बताया।

गोविंद की समझ में नहीं आया कि बूढ़ी की मूर्खता पर हँसे या रोये? उसकी माँ ही खुद उसकी बलि देने भेज रही है! इस जाति के लोगों को किसी भी उपाय से नर-बलि देने से मुक्त करना होगा। मगर यह कैसे मुमकिन होगा? गोविंद के मन में एक उपाय सूझा। जुलूस के आगे बढ़ने पर वह पहाड़ी बस्ती की ओर दौड़ पड़ा। बस्ती में एक भी आदमी न था। गोविंद ने चुपके से एक झोंपड़ी में आग लगा दी और लौटकर भीड़ में आ घुसा।

सब लोग शाकिनी माई के निकट पहुँचे। शाकिनी माई की आँखें देखने में भयंकर लग रही थीं। सबने मूर्ति की परिक्रमा की, तब गाड़ी पर लाये गये आदमी को मूर्ति के सामने लाया गया। विकृत रूप में स्थित एक भैरव तलवार उठाये आँखें मूँदकर कोई मंत्र जाप रहा था।

गोविंद ने अपने कुत्ते को इशारा किया। दूसरे ही क्षण वह भैरव पर कूद पड़ा। उसकी कलई को मुँह में दबाकर उसे पीछे की ओर खींचने लगा। पल भर के लिए भैरव के साथ सभी लोग विस्मय में आ गये।

"हम लोगों से कोई अपराध हुआ होगा।" भैरव चिल्ला उठा।

गोविंद भैरव को समझाने लगा—"तुमने अच्छी तरह से समझ लिया है। मैं बताता हूँ कि वह अपराध क्या है? कान खोलकर सुनो।" इन शब्दों के साथ गोविंद ने कहना शुरू किया—"मैं मोतीपुर का निवासी हूँ। शाकिनी, ढाकिनी, यक्षिणी आदि सभी मेरे ही गाँव में पैदा हुई हैं। इन सब में शाकिनी बड़ी महिमावाली हैं। हम लोग हर साल उस माई को एक सौ एक आदमियों की बलि देते आ रहे हैं। मगर इस साल बलि देने के लिए हमने जिन एक सौ एक आदमियों को तैयार किया, उनमें एक ब्राह्मण भी था। जब हम उस ब्राह्मण की बलि देने जा रहे थे, तब वह ब्राह्मण काल भैरव से बोला—"पिछली रात को शाकिनी देवी के साथ मेरा विवाह हो गया है। इसलिए वह मांस नहीं छू सकती। आज से तुम लोगों को मनुष्यों की बलि देना बंद करना होगा, वरना इसका फल तुम्हें भोगना पड़ेगा।"

"इस पर हमारा काल भैरव ठठाकर हँस पड़ा और बोला—'तुम शायद अपने को बड़े ही पहुँचे हुए महात्मा समझते हो! क्या शाकिनी देवी ने तुम्हारे साथ शादी कर ली? मांस खाना उन्होंने छोड़ दिया है? तब तो देखते रह जाओ! मैं उसी के मुँह से मांस खिलाता हूँ।' यों कहते उसने

एक आदमी की बलि चढ़ाई। खून छितर कर भैरव की आँखों में गिर गया। आसमान में बिजली चमकी, जमीन थर्रा उठी, बस, सबके देखते काल भैरव कुत्ते के रूप में बदल गया। आसमान से अंगारे बरसे, सारा गाँव जल उठा। इस पर मैं किसी प्रकार इस काल भैरव को कुत्ते के रूप से मुक्ति दिलाने के लिए अपने साथ लेकर तीर्थाटन पर चल पड़ा हूँ।"

भैरव ने कुत्ते और गोविंद को भी सहमी हुई आँखों से देखा। गोविंद भैरव से बोला—"भैरव, देखो, मैं तुम्हें बलि देने से ज़बर्दस्ती रोक नहीं रहा हूँ। अपनी ही जाति का प्राणी मानकर हमारा भैरव कुत्ते के रूप में रहकर भी तुम्हें बचाने की कोशिश कर रहा है। क्योंकि शाकिनी देवी असाधारण शक्ति रखती हैं, कहा जाता है कि इस देवी ने बचपन में शादी के वक़्त अपने पति को निगल डाला है। इसीलिए तो वह आज तक पुरुषों की ही बलि चाहती आ रही हैं।"

इस बीच कुछ लोग दौड़े-दौड़े वहाँ आ पहुँचे। बस्ती में आग लग जाने की ख़बर दी। गोविंद ने जो बातें सुनाई थीं वे सच्ची प्रतीत हुईं। कुछ लोगों का विश्वास गोविंद की बातों में जम गया।

भैरव ने कुत्ते के पैरों पर गिरकर विनती की—"काल भैरव! मैं तुम्हारी भलाई को ज़िंदगी भर भूल नहीं सकता। तुमने मुझे कुत्ता बनने से बचाया है। आइंदा मैं शाकिनी माई को नारियल और कुम्हाड़ों की ही बलि चढ़ाऊँगा। मैं भी माँस खाना छोड़ दूँगा।"

इसके बाद गोविंद के साथ सभी लोग बस्ती में पहुँचे। सिर्फ़ दो-तीन झोंपड़ियाँ मात्र जल चुकी थीं। भस्मी भूत झोंपड़ियों को फिर से खड़ा किया जा सकता है, मगर प्राण के निकलने पर कहाँ लौटकर आनेवाला था! इसलिए गोविंद ने अपनी करनी पर कोई पश्चात्ताप नहीं किया।

इसके बाद गोविंद अपने कुत्ते को साथ ले दूसरे गाँव की ओर चल पड़ा।

माधव नामक एक किसान ने अपनी मौत निकट आया जानकर अपने घर और चार एकड़ जमीन को अपने दोनों पुत्रों में बराबर बांट दिया। मरते समय माधव ने अपने छोटे पुत्र को समझाया—"बेटा, तुम्हें अगर किसी चीज की ज़रूरत आ पड़े तो अपने बड़े भाई से माँग लो। विपत्ति के समय तुम अपने खेत की ईशान दिशा में एक कुआं खुदवा लो।"

माधव का बड़ा लड़का रंगनाथ उत्तम स्वभाव का था। काम-काज में बड़ा कुशल भी था। दूसरा बेटा सोमनाथ असमर्थ और सुस्त था।

बरसात के मौसम के शुरू होते ही रंगनाथ ने अपने खेत में जोताई शुरू कर दी, मगर सोमनाथ ने अपने बड़े भाई की सलाह न मानी। उसने खेत का काम बिलकुल नहीं किया। आवारा गर्दी करने लगा। रंगनाथ लाचार होकर चुप रह गया।

दिन बीतने लगे। रंगनाथ का खेत हरा-भरा था। उसे देखने से दिल भर जाता था। सोमनाथ का खेत बंजर पड़ गया था। अपने बड़े भाई के खेत को हरा-भरा देख वह ईर्ष्या से भर उठा।

सोमनाथ ने रंगनाथ से कहा—"भैया, मैंने तुम्हारी सलाह न मानी, इस बात का मुझे बड़ा दुख है। तुम जानते हो कि खेती करना मैं नहीं जानता, मेरा खेत बंजर पड़ा हुआ है। तुम इसे उपजाऊ बनाकर दे दो न!"

रंगनाथ ने मान लिया और अपने छोटे भाई का खेत जोतने लगा। दो दिन बाद सोमनाथ रंगनाथ से बोला—"भैया, तुम मेरा खेत लेकर अपना खेत मुझे दे दो। बाक़ी काम जैसे-तैसे मैं पूरा कर लूंगा।"

अलका राय

इस बात को भी रंगनाथ ने मान लिया। फिर क्या था, रंगनाथ और सोमनाथ ने अपने अपने खेत बदल लिये। रंगनाथ ने सोमनाथ का जो खेत लिया, उसके लिये सिंचाई की सुविधाएँ न थीं। रंगनाथ के खेत में कुआँ था, मगर उस कुएँ का पानी सोमनाथ के खेत में बहाया नहीं जा सकता था। इसलिए सोमनाथ को उसके पिता ने कुआँ खोदने की सलाह दी थी। बूढ़ा पिता जानता था कि उसका दूसरा बेटा सोमनाथ खेती करने में रुचि नहीं रखता है, इसीलिए उसे साधारण जमीन दे दी थी।

रंगनाथ ने अपने पिता की सलाह के मुताबिक़ खेत के ईशान दिशा में कुआँ खुदवाना प्रारंभ किया। दो गज की गहराई तक खोदने पर उसे एक हंडी मिली। उसका मुँह बंद था। रंगनाथ ने अचरज में आकर उसका ढक्कन खोला। देखता क्या है, उसमें धन भरा हुआ है। रंगनाथ ने समझ लिया कि वह धन उसके पिता की ज़िंदगी भर की कमाई है। सोमनाथ को अयोग्य देख उसे साधारण जमीन देकर उसमें अमुक जगह कुआँ खोदने की सलाह दी है। रंगनाथ क़ाबिल आदमी था, इसलिए उसके वास्ते पिता ने कोई विशेष प्रबंध नहीं किया है।

अपने पिता की इच्छा की पूर्ति करने के ख्याल से रंगनाथ ने वह धन सोमनाथ को सौंपने का निश्चय किया और शाम को वह धन लेकर घर पहुँचा। मगर उसकी इच्छा पूरी न हो पाई।

रंगनाथ जिस वक़्त खेत में कुआँ खोद रहा था, तब सोमनाथ ने अपने हिस्से का मकान और अपने भाई से लिये फसलवाले खेत को भी किसी के हाथ बेच डाला। वह धन लेकर कहीं चला गया। खेत के सारे काम रंगनाथ ने पूरे किये थे। फिर भी फ़सल काटकर घर लाने की सामर्थ्य भी सोमनाथ में न थी।

इस पर रंगनाथ को अपने छोटे भाई के दुर्भाग्य पर दया आ गई।
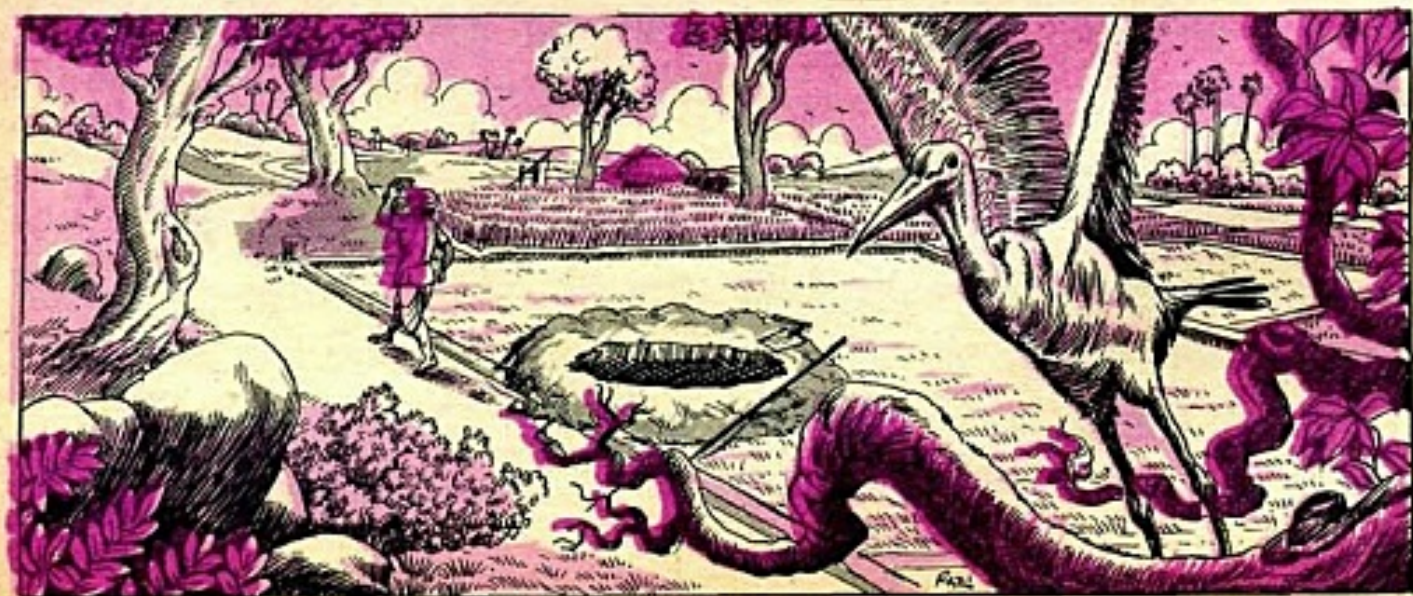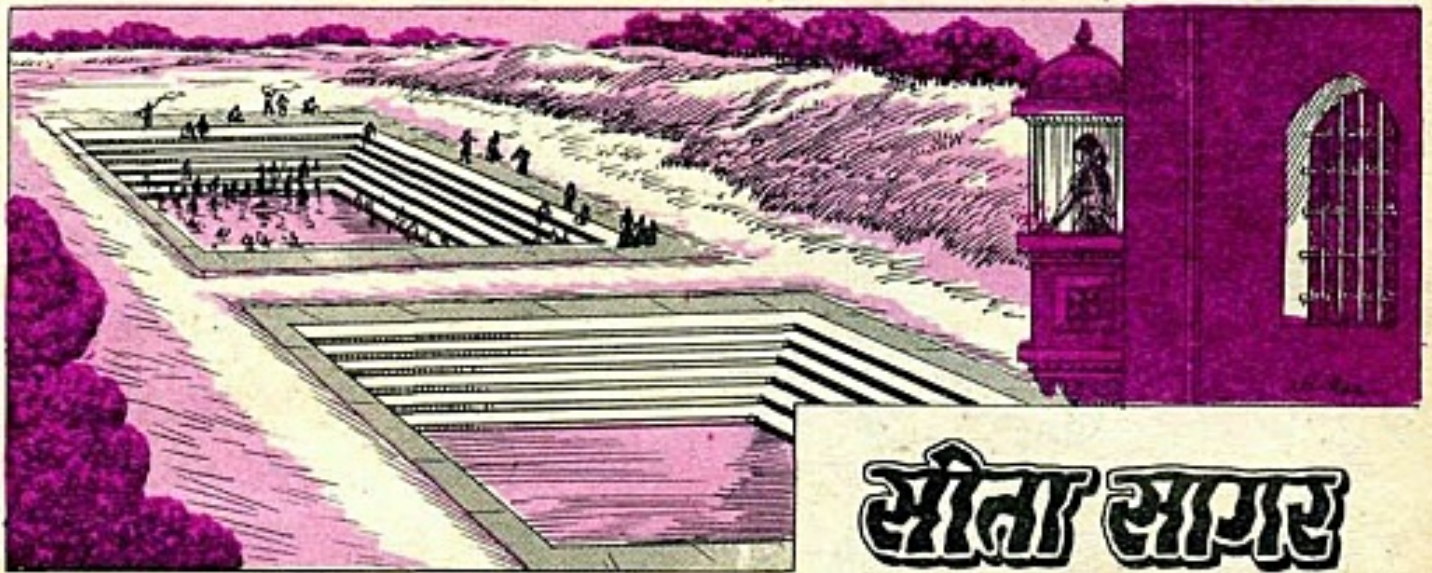
मोतीपुर के जमीन्दार रूपराम की पत्नी लक्ष्मी बड़ी पतिव्रता थी। एक पुत्र का जन्म देने के बाद वह एक पर्व के दिन शुभ घड़ी में स्वर्ग सिधारी। जमीन्दार अपनी पत्नी के प्रति बड़ा प्रेम रखता था। उसने अपनी पत्नी के नाम एक तड़ाग खुदवा कर उसका नामकरण 'लक्ष्मी सागर' किया था। जब उसका देहांत हुआ, तब उसका दाह-संस्कार लक्ष्मी सागर के तट पर ही कराया। इसके बाद गाँव के लोग लक्ष्मी की मृत्यु के दिन हर साल लक्ष्मी सागर में स्नान करते और उत्सव मनाने लगे।

जमीन्दार ने थोड़े समय तक फिर से विवाह सहीं किया। लेकिन कुछ दिन बाद वह एक और जमीन्दार का निमंत्रण पाकर उसके अतिथि बनकर गया। वहाँ पर उस जमीन्दार की पुत्री सीता को देखा। सीता देखने में सुंदर थी और विदुषी भी थी। इसलिए सीता के पिता ने रूपराम के साथ अपनी पुत्री का विवाह करने की इच्छा प्रकट की। तब रूपराम इनकार न कर पाया।

सीता जब रूपराम, के घर आई तब सब उसके सहज सौंदर्य पर मुग्ध हो गये। सीता भी अपने सौतेले पुत्र को अपनी ही संतान के समान पालने लगी। रूपराम ने एक और तड़ाग खुदवाया और उसका नामकरण सीता सागर किया। लेकिन लोग लक्ष्मी सागर को जैसे पवित्र मानते थे, वैसे सीता सागर को मानते न थे।

सीता जब अपने कमरे में गवाक्ष के पास बैठकर लक्ष्मी सागर को देखती, तब स्वभाव से बड़ी विशाल हृदया होने पर भी वह अपनी सौत के प्रति ईर्ष्या से भर उठती थी।

एक बार जमीन्दार ने सीता की प्रशंसा में कहा–"सीता, तुम सब प्रकार से धन्य हो।" इस पर सीता ने गहरी सांस लेकर उत्तर दिया–"यदि मुझे लक्ष्मी की तरह धन्य बनना है तो एक पर्व के दिन शुभ घड़ी में मृत्यु को प्राप्त कर सीता सागर के तट पर मेरा दाह-संस्कार होना है।"

सीता के मुँह से ये शब्द सुनने पर रूपराम ने अपनी पत्नी की व्यथा को भांप लिया, उसे संतुष्ट करने केलिए कोई उत्तम कार्य करने का उसने मन में निश्चय कर लिया।

रूपराम की कचहरी में सोमनाथ नामक एक जादूगर था। वह रूपराम का बचपन का मित्र था। इसलिए रूपराम उसके सामने अपने मन की कोई बात छिपाता न था। अनेक अवसरों पर रूपराम की समस्याओं को सोमनाथ ने हल किया था।

एक दिन रूपराम ने सीता से कहा–"मैं सीता सागर के तट पर एक मंदिर बनाऊँगा। तब जनता की दृष्ट में सीता सागर भी लक्ष्मी सागर जैसे पवित्र बन जाएगा।"

इस पर सीता बोली–"लक्ष्मी सागर स्वयं ही पवित्रता को प्राप्त है। अगर सीता सागर को पवित्रता प्राप्त होगी तो वह मंदिर की होगी, मगर सीता सागर की कैसी हो सकती है? तिस पर भी मैं तो बांझ हूँ।"

"वह मंदिर तुम्हारे ही नाम पर बनवा दूंगा; वह एक शिवाला होगा। कौन जाने? शिवजी के अनुग्रह से तुम्हें भी संतान हो जाय!" जमीन्दार ने समझाया।

शीघ्र ही सीता सागर के किनारे संग मरमर पत्थरों वाला शिवाला बन कर तैयार हो गया। अब केवल ईश्वर की मूर्ति को उस में प्रतिष्ठित करना शेष रह गया था। उसी वक़्त यह ख़बर मिली कि सीता गर्भवती है। यह समाचार मिलने पर सोमनाथ ने रूपराम से कहा–"यह ख़बर सीताजी के लिए बड़ी प्रसन्नता की

बात होगी। मगर उसकी प्रसन्नता दुगुनी होनी है तो लक्ष्मी सागर को जो पवित्रता प्राप्त है, वह सीता सागर को भी प्राप्त होनी है! तभी उसकी चिंता वास्तव में दूर हो सकती है।"

रूपराम ने कहा—"यह तो मेरे हाथ की बात नहीं है। मैं जनता को कैसे समझा सकता हूँ कि वे सीता सागर के प्रति भी भक्ति भाव प्रदर्शित करें। लक्ष्मी का देहांत एक पर्व के दिन सुमंगली के रूप में हुआ था, इस कारण लोग लक्ष्मी सागर को पवित्र मानने लगे हैं।"

ये बातें सुन सोमनाथ ने रूपराम को समझाया—"अगर आप का सहयोग प्राप्त होगा तो मैं वह काम करके दिखाऊँगा जिसे करने में आप अपने को असमर्थ पाते हैं। लेकिन मेरी एक शर्त है, मूर्ति की प्रतिष्ठा करने के लिए उसे प्रकट रूप में नहीं लानी है। हमें ऐसा नाटक रचना होगा कि वह मूर्ति हमारे ही गाँव में प्रकट हो गई है।" इन शब्दों के साथ सोमनाथ ने रूपराम को कोई युक्ति बताई।

दूसरे ही दिन गाँव में यह समाचार फैल गया कि रूपराम ने रात को एक सपना देखा है। उसका सारांश है कि मंदिर में प्रतिष्ठापित करने के लिए मूर्ति कहीं न कहीं गाँव में ही प्रकट होगी; उसके वास्ते कोई अन्य प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं। मूर्ति कहाँ प्रकट होगी, यह बात कालांतर में मालूम हो जाएगी।
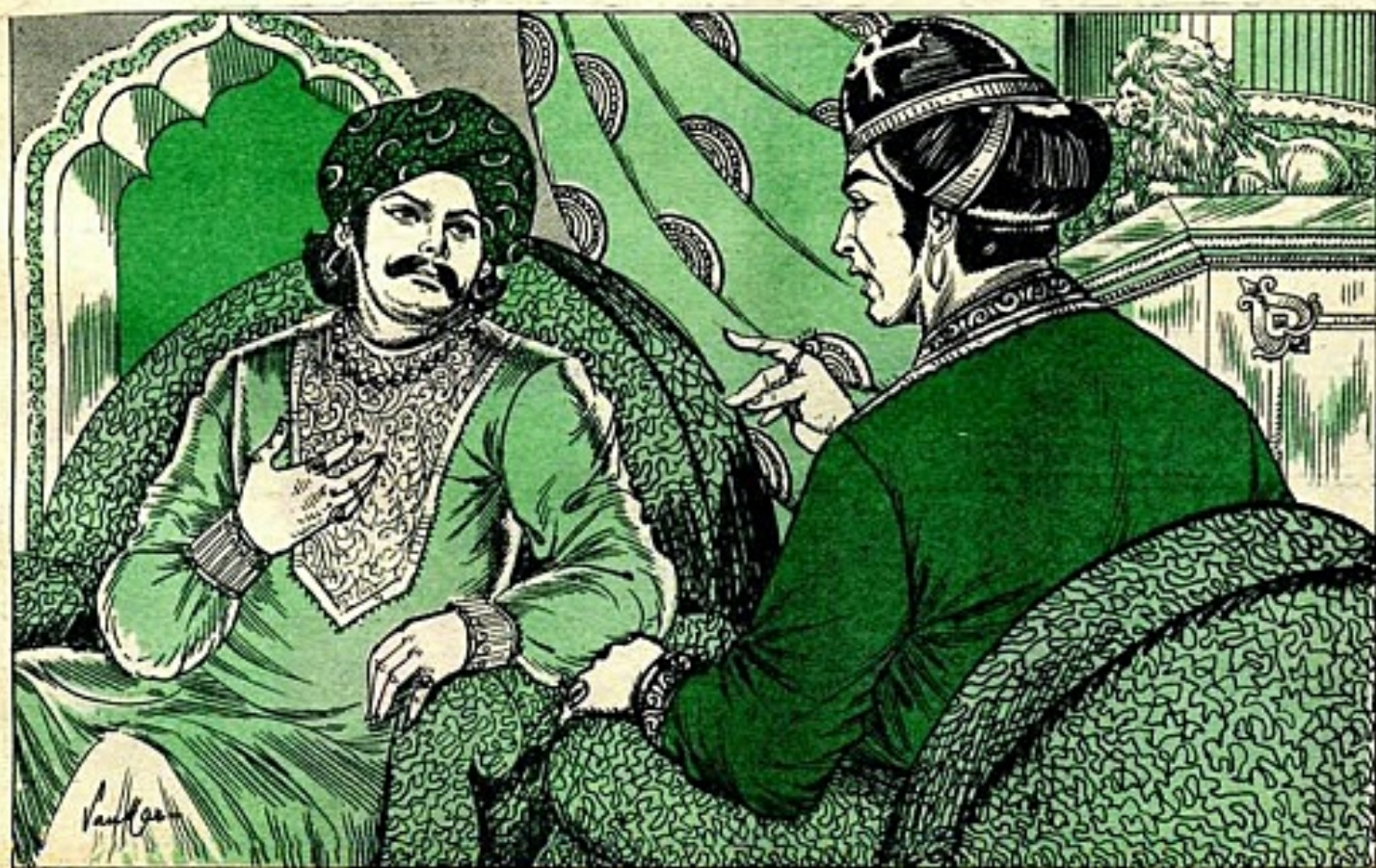
मूर्ति की प्रतिष्ठा का दिन निश्चय हो चुका था। उसके एक दिन पहले यह समाचार फैल गया कि वह किसी तड़ाग में प्रकट होगी। वह किस तड़ाग में प्रकट होनेवाली है, इसकी जाँच उस तड़ाग के पानी की परीक्षा से हो सकती है। यह परीक्षा मंदिर में उस दिन शाम को होगी। सभी तड़ागों के जल मिट्टी के बर्तनों में लाना होगा। ईश्वर के आदेशानुसार जमीन्दार ही इसकी परीक्षा लेंगे।

निश्चित दिन शाम को मंदिर के प्रांगण में गाँव के लोग भी जमा हुए। विभिन्न तड़ागों के जल विभिन्न बर्तनों में लाया गया। रूपराम ने अपने हाथ में कांच का एक गिलास लिया, उसमें बारी-बारी से एक-एक तड़ाग का जल भर कर ईश्वर का नाम जाप किया। मगर जब जमीन्दार ने सीता सागर का जल गिलास में भर कर उसे ऊपर उठाया, तब उस का जल बैंगनी रंग में बदल गया। इस प्रकार उस लड़ाग की महिमा प्रकट हो गई।

इसके बाद सीता सागर के चतुर्दिक खोजने पर मंदिर में प्रतिष्ठित करने के लिए आवश्यक मूर्ति प्रकट हो गई। उस मूर्ति का जूलूस निकाल कर लाया गया और दूसरे दिन मंदिर में उसकी प्रतिष्ठा की गई। इस के बाद सीता सागर को भी वह पवित्रता प्राप्त हो गई और वहाँ पर भी हर साल उत्सव मनाये लगे।

जल में रंग लाने की प्रक्रिया करनेवाला व्यक्ति सोमनाथ था। उसने एक काले पतले धागे में पोटासियम् फर्मागिनेट का चूर्ण चिपका दिया, जमीन्दार के ऊपर उठाये हाथ में उसे लटका दिया गया, जमीन्दार ने जब सीता सागर का जल भरकर गिलास ऊपर उठाया, तब उसने जलवाले गिलास को ऐसे पकड़ लिया जिस से धागे का अंतिम छोर जल को छू जाय। फिर क्या था, उसी धागे की वजह से पानी का रंग बदल गया।

थोड़े महीने बाद सीता ने एक सुंदर लड़की का जन्म दिया।
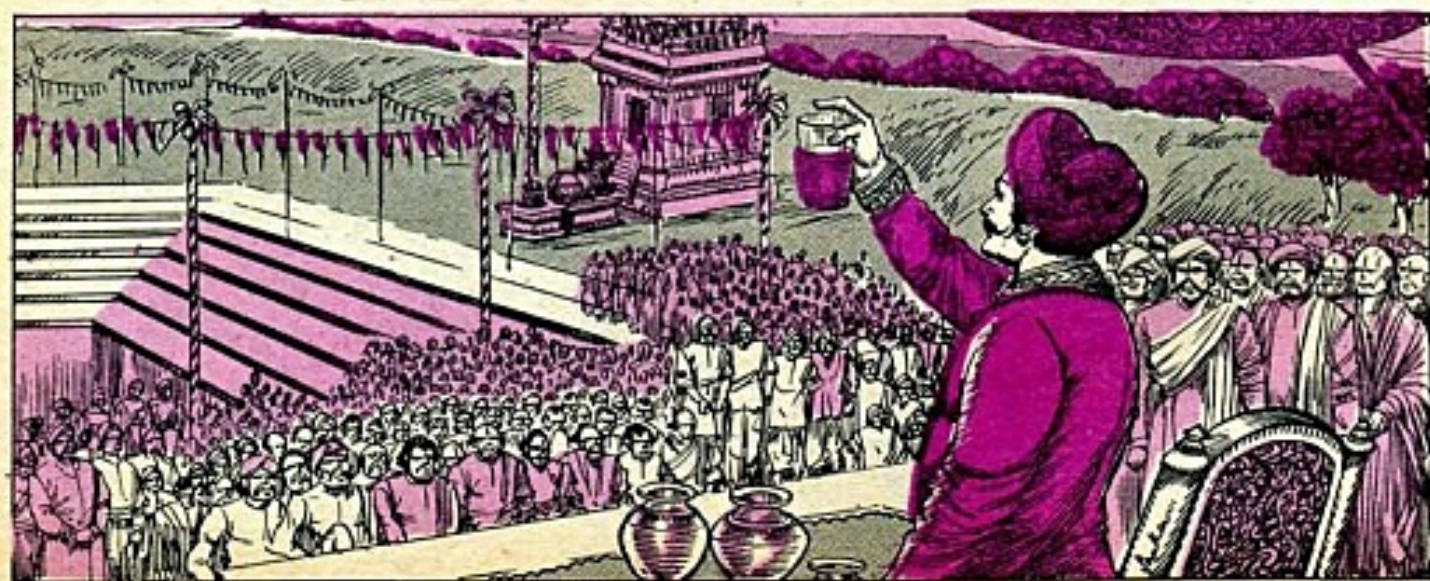
प्रेम की परीक्षा

कांचीपुर में धनगुप्त नामक एक जौहरी था। उसके यहाँ एक क़ीमती जहाज़ था। जहाज के द्वारा वह रत्नों का व्यापार किया करता था। वह विदेशों में कम मूल्य पर हीरे खरीदता और अपने देश में ज़्यादा मूल्य पर बेचकर लाखों रुपये कमाता था।

धनगुप्त के पद्मकला नामक एक कन्या थी। उसकी माँ बचपन में ही मर गई थी, इसलिए पिता धनगुप्त ने ही उसे बड़े ही लाड़-प्यार से पाल-पोसकर बड़ा किया। धनगुप्त का विचार था कि पद्मकला का विवाह एक लखपति युवक के साथ ही किया जाय।

लेकिन पद्मकला ने विद्यागुप्त नामक एक युवक के साथ प्यार किया और दोनों ने परस्पर विवाह करने का निर्णय भी कर लिया। धनगुप्त इस बात से अपरिचित था, इसलिए वह अन्यत्र पद्मकला के विवाह का प्रयत्न करने लगा।

पद्मकला को जब अपने पिता के प्रयत्नों का पता चला, तब उसने विद्यागुप्त को यह समाचार सुनाकर समझाया—"तुम जल्द ही मेरे पिता से मिलकर हमारा निर्णय सुना दो और तुम अपनी इच्छा पिताजी को बतला दो।"

विद्यागुप्त ने धनगुप्त से मिलकर अपनी इच्छा बताई और पूछा कि पद्मकला के साथ उसका विवाह करने की कृपा करें। पर धनगुप्त विद्यागुप्त की बात पर यक़ीन न कर पाया, उसने अंदर जाकर अपनी पुत्री से इस संबंध में पूछा।

पद्मकला ने स्पष्ट बताया—"पिताजी, विद्यागुप्त का कहना सत्य है। मैं उसे छोड़कर दूसरे युवक के साथ शादी करने को किसी भी हालत में तैयार नहीं हूँ।"

शरद कुमार

विद्यागुप्त का स्वभाव जाने बिना उसके हाथ अपनी कन्या को सौंपना धनगुप्त को कतई पसंद न था। पर साथ ही वह अपनी पुत्री के निर्णय का भी तिरस्कार न कर पाया। इसलिए धनगुप्त ने विद्यागुप्त के पास लौटकर बताया—"सुनो बेटा! दो दिन में मेरे एक रिश्तेदार आनेवाले हैं, मैं उनसे परामर्श करके अपना निर्णय सुनाऊँगा। तुम तब तक मेरे घर रह जाओ।"

विद्यागुप्त ने मान लिया। दो दिन के अंदर धनगुप्त का रिश्तेदार तो न आया, पर उसे एक दुखद समाचार मिला। वह यह कि विदेशों से क़ीमती हीरे लानेवाला उसका जहाज़ समुद्र के बीच डूब गया है।

यह खबर सुनकर धनगुप्त बड़ा दुखी हुआ। विद्यागुप्त को यह सोचकर डर पैदा हुआ कि कहीं धनगुप्त यह न सोचे कि उसी के कारण धनगुप्त की यह हानि हुई है। यह खबर पल भर में सर्वत्र फैल गयी, धनगुप्त के कर्जदार उसकी जायदाद पर क़ब्ज़ा करने की जल्दी मचाने लगे। इस पर धनगुप्त का दिल बैठ गया।

इसे देख धनगुप्त को विद्यागुप्त ने समझाया—"ससुरजी! आप चिंता न कीजिए, मैं आप को पालने की शक्ति रखता हूँ। लगता है कि यह सब ईश्वर ने हमारे प्रेम की परीक्षा लेने के लिए किया है। आप चिंता न करें; हमारे साथ चले आइये।"

ये शब्द सुनने पर धनगुप्त की चिंता जाती रही, उसके चेहरे पर प्रसन्नता की रेखाएँ खिल उठीं। उसने विद्यागुप्त से कहा—"बेटा, यह परीक्षा भगवान की दी हुई नहीं है। तुम्हारा स्वभाव जानने के लिए मेरे द्वारा रचा गया नाटक है। मैं यह जानना चाहता था कि तुम केवल मेरी पुत्री को ही चाहते हो या मेरी जायदाद! तुम मेरी परीक्षा में सफल निकले।"

इसके बाद शीघ्र ही विद्यागुप्त और पद्मकला का विवाह संपन्न हुआ। धनगुप्त ने अपना सारा व्यापार अपने दामाद को सौंप दिया और वह विश्राम करने लगा।

सारंग का वैराग्य

सुदर्भ देश में सब प्रकार की कुरीतियाँ फैली थीं। छुआछूत था। हरिजन गाँव से दूर बसाये गये थे। दहेज़ देने पर ही कन्याओं के विवाह संपन्न हो सकते थे। अधिकारी घूस लेते थे। गरीब व अमीर सभी लोग दारू पीने के आदी हो गये थे। धन के साथ स्वास्थ्य भी खो बैठते थे।

उसी देश में सारंग नामक एक महात्मा थे। उन्होंने निश्चय किया कि देश से कुरीतियों को दूर करना है तो जनता में व्याप्त अशिक्षा के भूत को दूर भगाना है। इसलिए उन्होंने साक्षरता के प्रचार तथा कुरीतियों का निर्मूल करने के लिए भारी पैमाने पर आन्दोलन चलाया। अनेक लोगों ने उनके आन्दोलन का विरोध किया, फिर भी युवकों ने अधिक संख्या में उनका समर्थन किया। राजा ने उस आन्दोलन को दबाने का प्रयत्न किया। सैनिकों ने जनता का साथ देकर राजा को गद्दी से उतारा। सारी प्रजा ने एक स्वर में कहा कि सारंग ही देश का शासन अपने हाथ में ले और वह राजा बन जावे।

मगर सारंग राज्य की कामना नहीं रखते थे। उन्होंने अपने मुख्य अनुचर चरितार्थ को राजा बनाया और उसे हिदायत दी कि वह जनता में कुरीतियाँ फैलने से रोके। तब वे तपस्या करने के ख्याल से जंगलों में चले गये। उन्होंने जंगल में आश्रम बनाकर पंद्रह साल तक तपस्या की। इसके बाद उनके मन में सुदर्भ देश का हाल जानने की इच्छा हुई।

सारंग ने चरितार्थ के पास अपने शिष्य को भेजकर उसके द्वारा अपनी यह इच्छा प्रकट की कि वह एक बार देश की हालत देखना चाहते हैं। यह खबर मिलते ही चरितार्थ स्वयं एक रथ पर सवार हो

सारंग को देखने आया। सारंग अपने आश्रम को शिष्यों के हाथ सौंपकर चरितार्थ के पीछे रथ पर चल पड़े।

सुदर्भ देश में सारंग का भव्य स्वागत हुआ। सारंग जब देश का भ्रमण कर रहे थे तब चरितार्थ भी उनके साथ था। सारंग सीधे कारागार में पहुँचे और वहाँ के अपराधियों को देख विवरण पूछा। उनमें दहेज़ लेनेवाले, शराबी, घूस लेनेवाले अधिकारी और अन्य अपराधी भी थे।

चरितार्थ ने समझाया–"राजभटों ने कुशलता पूर्वक अपराधियों का पता लगाकर उन्हें बन्दी बनाया है, इस कारण अपराध करके बच जाना उनके लिए कठिन होता जा रहा है।"

"ये लोग कब से कारागार में हैं?" सारंग ने पूछा।

"आप के आदर्शों को दृष्टि में रखकर हम कठिन दण्ड नहीं दे रहे हैं। ऐसे अपराधों के लिए छे महीने से ज्यादा दण्ड नहीं होता। मैं समझता हूँ कि इन लोगों के बन्दी हुए एक हफ़्ते से ज्यादा नहीं हुआ होगा।" चरितार्थ ने समझाया।

सारंग चौंककर बोले–"क्या अब हम यहाँ से चले जायें?"

इसके बाद वे दोनों एक विवाह मण्डप में पहुँचे। चरितार्थ समझाने लगा–"वर्णांतर विवाह करनेवाले लोगों के लिए ही इस मण्डप में सुविधाएँ दी जाती हैं। वर्णांतर विवाहों को प्रोत्साहित करने के

हेतु हमने इस मण्डप का निर्माण कराया है। अब तक इस मण्डप में एक सौ से ज्यादा विवाह हो चुके हैं। प्रत्येक विवाह के लिए हम एक हज़ार सिक्कों का पुरस्कार दिया करते हैं। दस दिन पहले इसमें अंतिम विवाह संपन्न हो गया है...."

ये बातें सुन सारंग ने अपनी आँखें पोंछ लीं। चरितार्थ ने सोचा कि सारंग की आँखों से आनंद बाष्प छलक आये हैं।

वहाँ से वे दोनों क्रीड़ा स्थल पर पहुँचे जहाँ पर कई लोग खेल रहे थे।

चरितार्थ ने उत्साह में आकर कहा– "महात्मा, देखते हैं न, आप जो परिवर्तन चाहते थे, वह इस देश मे कितने शीघ्र हो गया है।"

"वह कैसा पविवर्तन है?" सारंग ने पूछा।

"यहाँ पर खेलने वालों में उच्च वर्णों के लोगों के साथ निम्न जाति के लोग भी हैं।" चवितार्थ ने उत्तर दिया।

"आप कैसे जानते हैं कि इन में निम्न वर्ण के लोग भी हैं?" सारंग ने पूछा।

"यहाँ पर उच्च वर्ण तथा निम्न जाति के लोगों को मिलकर खेलना है। इसी के वास्ते इस क्रीड़ा स्थल का प्रबंध करके छुआछूत का निर्मूलन कर रहे हैं। इसका पता आसानी से लगाने के हेतु उच्च वर्णवाले नीले रंग की पोशाकें तथा निम्न जाति के लोग हरे रंग की पोशाकें पहनकर खेलते हैं।" चरितार्थ ने समझाया।
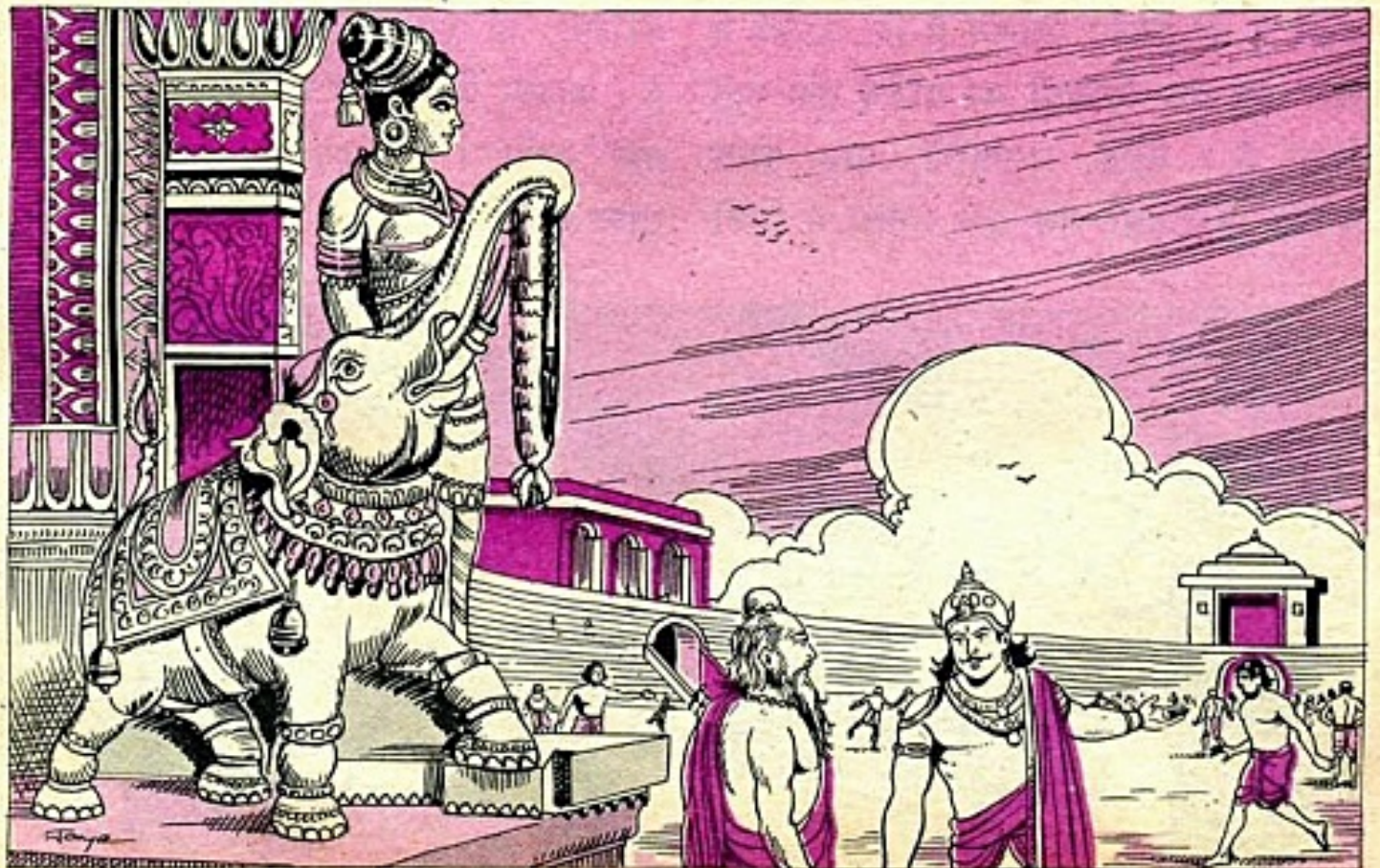
इस पर सारंग की आँखों में जल भर आया और उनकी दृष्टि धुंधली पड़ गई।

"कल हम देश का पर्यटन शुरू करेंगे!" चरितार्थ ने कहा।

"हमने जो कुछ देखा, वही पर्याप्त है! पर्यटन करने की मेरी इच्छा जाती रही। मेरी वापसी यात्रा का प्रबंध कीजिए।" सारंग ने कहा।

"आप यह क्या कहते हैं गुरुदेव?" चरितार्थ ने आश्चर्य में आकर पूछा।

"मैंने सोचा था कि इस देश में निम्न जाति की बात कहीं सुनाई तक न दे। यहाँ पर तो छुआछूत का पता जनता को अब तक लग रहा है और उनके साथ मिलकर रहने में बड़प्पन की बात समझी जाती है। यदि वर्णांतर विवाहों के लिए राज्य की तरफ़ से पुरस्कार का प्रबंध है तो इसका मतलब है कि जनता ने अब तक ऐसे विवाहों का प्रारंभ तक नहीं किया है। दहेज़, घूसखोरी, दारू पीना वगैरह कुरीतियाँ अब तक जनता में मिटी नहीं हैं। इसलिए उन्हें दण्ड दिये जा रहे हैं। राजा होकर भी आप इस रहस्य को समझ न पाये, मगर इस बात का गर्व कर रहे हैं कि आप ने कुछ साध लिया है। कुरीतियाँ कानूनों के द्वारा खतम नहीं होतीं। जनता के मन में परिवर्तन लाना होगा। मेरे प्रशिक्षण में आप जनता के नेता बने हैं; आप के शासन की यह हालत है, तो किसी दूसरे के राजा बनने पर वह और अधिक साध लेगा, इस बात की जरा भी मुझे आशा नहीं है। मैंने आप को जनता का सही नेता समझा, मेरा यह निर्णय गलत निकला। एक बार मैंने भूल की है तो इस बात पर भरोसा क्या है कि मैं फिर भूल नहीं करूँगा। इसलिए मेरे मन में वैराग्य का उदय हो गया है। आप अपनी इच्छा के अनुसार शासन कीजिए, मैं अपने आश्रम को लौट जाता हूँ। आइंदा फिर कभी मैं इस देश में क़दम नहीं रखूंगा।" सारंग ने अपने विचार स्पष्ट बताये।

उल्टी चाल

बीरमदेवी के पति का जब देहांत हुआ, तब उसके पुत्र बच रहें। थोड़े दिन जैसे-तैसे उसने अपने बेटों को पाला। पर आगे उन्हें पालना बड़ा मुशिकल हो गया। फ़सल भी अच्छी न हुई थी। उल्टे बीरमदेवी के लड़कों को काम तक न मिला।

अपना थोड़ा बोझ कम करने के ख्याल से बीरम देवी ने अपने बड़े बेटे को सीतापुर में स्थित अपने भाई के घर भेजा। वह जानती थी कि उसका भाई और भाभी दूसरों का उपकार नहीं करते, फिर भी उसने सोचा कि कम से कम एक लड़के का भार अपने उपर लेंगे।

लेकिन अचरज की बात थी कि एक हफ़्ता गुजरने के पहले ही बीरम देवी का बड़ा बेटा घर लौट कर बोला–"मामी की तबीयत ठीक नहीं है। जब वह चंगी हो जायेंगी, तब वे ही खुद बुला लेंगे और महीने-भर अपने घर रख लेंगे। मामाजी ने मुझ से यही बताया है।"

बीरम देवी ने अपने भाई और भाभी की कंजूसी की मन ही मन गलियाँ दीं।

दिन बड़े मुश्किल से गुजरने लगे। बीरमदेवी घर के बर्तन-भांड़े बेच-बाच कर अपने दिन काटने लगी। आनेवाले दिनों की याद करने पर उसका दिल दहल उठा। इसलिए इस बार बीरम देवी ने अपने दूसरे बेटे को भाई के घर भेजा। मगर वह तीसरे दिन ही घर लौट आया।

अपने बेटे को देख बीरमदेवी ने डांट कर कहा–"इतनी जल्दी तुम क्यों लौट आये? तुम तीनों का मैं पालन-पोषण नहीं कर सकती! जाओ; कहीं भाग जाओ!"

तीसरा लड़का अपनी माँ का बोझ थोड़ा कम करने के खयाल से बोला–"माँ,

विजय नारंग

में थोड़े दिन मामाजी के घर बिता कर लौट आऊँगा ।" यों कह कर वह सीतापुर की ओर चल पड़ा । जब वह अपने मामा के गाँव पहुँचा, तब उसकी मामी मीठे पुए खा रही थी, उस लड़के को देखते ही उसने झट से पुए छिपा दिये और चादर ओढ़कर खाट पर लेट गई ।

इस पर लड़के का मामा बोला–"देखते हो न बेटा? इधर तुम्हारी मामी की तबीयत बिलकुल बिगड़ गई है । सारा काम मुझे करना पड़ रहा है, उधर खेत का काम, इधर घर के काम-काज करते मैं तंग आ गया हूँ ।"

तीसरे लड़के ने अपने मामा की बातों को काटते हुए कहा–"मामाजी! आप फ़िक्र न कीजिएगा । आप ऐसे कष्ट उठा रहे हैं तो मैं देखते कैसे रह सकता हूँ? मैं अभी अपने गाँव जाकर माँ और भाइयों को भी यहीं पर बुला लाता हूँ। माँ घर के काम-काजों के साथ रसोई भी बनायेंगी; हम तीनों भाई खेत का काम करेंगे। आप मजे से घर पर आराम कीजिए । तब तो क्या मैं चल कर उन्हें बुला लाऊँ?" यों कह कर वह चलने को हुआ ।

अपनी चाल के न चलते देख लड़के का मामा आवाक् रह गया । वह आँखें तरेर कर देखता ही रह गया । मगर मामी ने होनेवाले खतरे को झट से भांप लिया । दुपट्टा फेंक कर उठ बैठी और बोली–"अजी, आप यों चुपके से बैठे क्यों हैं? देखते हैं न आप के भानजे को मेरे प्रति कैसी सहानुति है? मेरी तबीयत के बिगड़ने की बात सुनकर वह अपनी माँ को बुला लाना चाहता है । आपके मन में क्या कभी ऐसा ख्याल भी आया? मेरी बीमारी की आप चिंता न कीजिए; जाइये, आप अपने खेत का काम संभालिए। हम दोनों घर के काम संभाल लेंगे।" यों समझाकर लड़के को गाँव जाने से मामी ने रोक लिया ।

अपनी चाल के चलते देख बीरमदेवी का तीसरा बेटा मन ही मन खुश हुआ ।
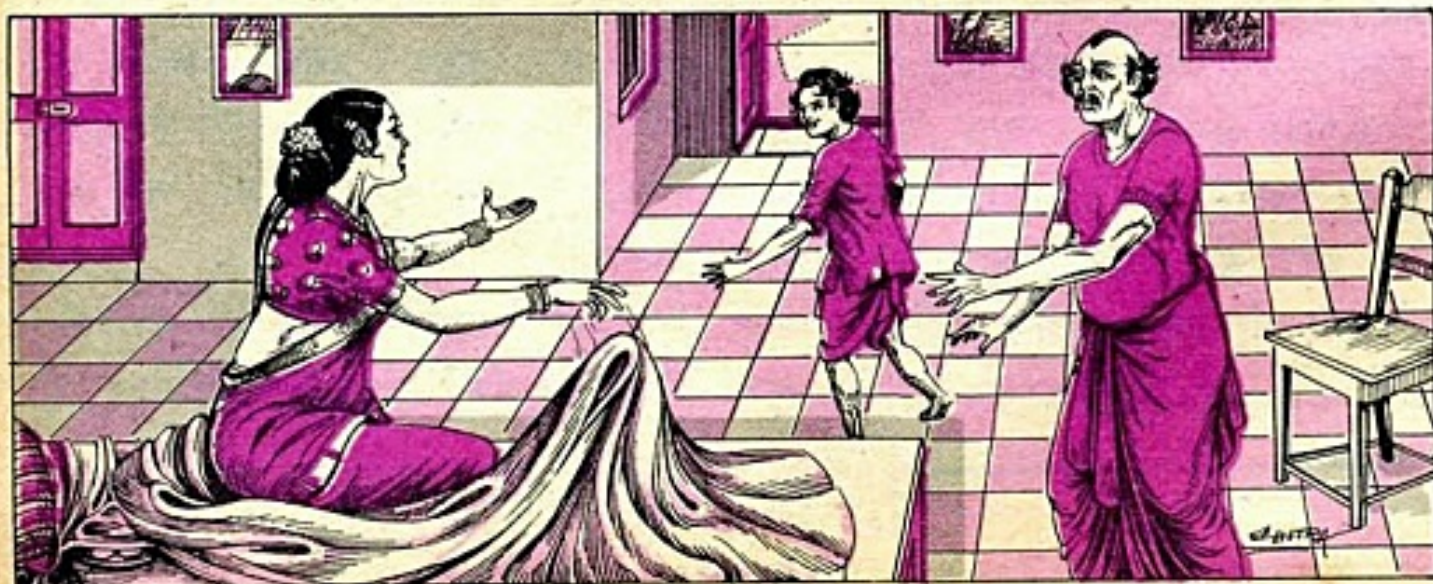
गंगा और यमुना

श्रीहरि एक किसान का बेटा था।

उसके खेत की फ़सल अक्सर बाढ़ के कारण नष्ट हो जाती थी। इसलिए वह केवल खेत पर निर्भर रहना नहीं चाहता था, अतः वह आजीविका की खोज में शहर की ओर चल पड़ा।

शहर के समीप में एक नदी बह रही थी। श्रीहरि नदी में स्नान कर कपड़े बदल रहा था, तभी वहाँ पर पानी भरने एक काली लड़की आ पहुँची।

श्रीहरि ने उस काली लड़की से पूछा–"सुनो तो सही, तुम क्या कचहरी में काम करनेवाले वीरेन्द्र का घर जानती हो?"

"वीरेन्द्रजी के मकान से सट कर तीसरा ही मकान हमारा है। मेरा नाम गंगाबाई है। वीरेन्द्र की लड़की यमुना बाई मेरी सहेली है। उनका मकान हनुमानजी के मंदिर की बगल में ही है।" यों समझा कर वह काली लड़की पानी भरने के लिए झुक गई, फिर चौंक कर अपने कंठ में टटोलने लगी।

श्रीहरि ने पूछा–"घबराई हुई क्यों हो?"

"मेरे गले की माला कहीं गिर गई है। आज मेरी चाची मेरी जान लेकर ही छोड़ेगी।" गंगा दुखी स्वर में बोली। शायद उसकी सौतेली माँ झगडालू हो, यह सोचकर श्रीहरि भी माला की खोज करने लगा; मगर माला कहीं नहीं मिली।

गंगा अपने आंचल से आँसू पोंछते हुए पानी का कलश बगल में दाबकर निराश हो घर चली गई।

इसके बाद श्रीहरि भी शहर की ओर चल पड़ा। वह नदी के किनारे स्थित मंदिर में थोड़ी देर रुक गया। इस कारण

रामलाल यादव

वह गंगा से पीछे रह गया। अभी तक लोगों का आना-जाना चालू न था।

श्रीहरि मंदिर से निकल कर थोड़ी ही दूर चला था कि रास्ते के किनारे उसे एक माला दिखाई दी। उसने सोचा कि शायद यही माला गंगा की होगी, उसने माला उठाई, तब वह सोचने लगा कि इसे जल्दी गंगा के हाथ सौंप दे तो शायद वह अपनी सौतेली माँ के दुतकारों से बच सकती है।

श्रीहरि ने मंदिर तक पहुँच कर गंगा के मकान का पता लगाया। वहाँ जाकर उसने देखा कि गंगा की सौतेली माँ उस से कई झूठे बर्तन मंजवा रही है। श्रीहरि माला गंगा की सौतेली माँ के हाथ सौंपते हुए बोला–"माई जी, यह माला गंगा की है। मुझे रास्ते में मिल गई, आप गंगा को कुछ न कहियेगा। रास्ते में फ़िसल कर गिर गई होगी।"

गंगा की सौतेली माँ ने चट से माला लेकर कहा–"हमारी चीज़ हमें मिल गई है, अब तुम जा सकते हो।"

गंगा अचरज में आकर यह दृश्य देखती रह गई। श्रीहरि वहाँ से सीधे वीरेन्द्र के घर पहुँचा। वीरेन्द्र ने श्रीहरि का परिचय पाकर उस के कुशल-क्षेम पूछा। उसकी नौकरी का उचित प्रबंध करने का आश्वासन दिया, उसके खाने का इंतज़ाम करने के लिए अपनी बेटी यमुना बाई को आदेश दिया। तब वह कचहरी चला गया। यमुना श्रीहरि के प्रति उपेक्षा का भाव दर्शाने लगी।

थोड़ी देर बाद श्रीहरि भोजन करके घर से बाहर निकला, तभी गंगा घबराये हुए दौड़ कर आ पहुँची और बोली–"यह माला मेरी नहीं है। मेरी माला टूट गई थी, इसलिए मैं उसे पेटी में रख कर यह बात भूल गई थी। आपको यह जो माला मिली है, इसे आप ही रख लीजिए! मैं अब जाती हूँ, मेरी चाची मुझे ढूंढती होगी।"

इसके बाद श्रीहरि गंगा के इस व्यवहार पर विचार करते माला अपनी थैली में

डाल सो गया । उसने नींद से जागकर देखा, बीरेन्द्र कचहरी से लौट आया है । मगर यमुना घर पर न थी, किसी धनवान की बेटी को दुलहिन बनाया जा रहा था, उसे देखने गई थी । इधर श्रीहरि और बीरेन्द्र बातचीत कर ही रहे थे, तभी चार सिपाही वहाँ आ पहुँचे और श्रीहरि को धनी के घर आने का आदेश दिया । इसलिए घबरा कर बीरेन्द्र भी श्रीहरि के पीछे चल पड़ा ।

वहाँ पर श्रीहरि पर चोरी का इलज़ाम लगाया गया । वास्तव में बात यों थी :

धनवान की लड़की की मंगनी के समय उसकी होनेवाली सास ने बहू के गले में एक क़ीमती माला डाल दी थी । पिछले दिन वह कन्या अपनी सहेली के साथ मंदिर में गई, जब वह शाम को घर लौट रही थी, तब कोई चोर उसके कंठ की माला को तोड़कर भाग गया था । जब वह युवती चिल्ला उठी–"चोर! चोर है! पकड़ो ।" तब कुछ लोगों ने चोर का पीछा किया, मगर चोर हाथ में न आया । धनी यह सोचकर दुःखी हुआ कि विवाह जैसे शुभ कार्य के समय गहना खो गया है, कोई अशुभ हो सकता है!

इधर यमुना दुलहिन को देखने वही माला पहन कर चली गई थी । उन

लोगों ने माला को पहचान कर यमुना को डांटा, तब उसने बताया–"मैं इस माला के बारे में कुछ नहीं जानती । मेरे पिताजी के दोस्त श्रीहरि ने मुझे यह माला भेंट दी है ।" इसलिए श्रीहरि को ही चोर समझ कर सिपाही उसे पकड़ने आये!

ये सारी बातें सुनने पर असली बात श्रीहरि की समझ में आ गई । उसने सोचा कि जब वह सो रहा था तब उस माला को हड़प कर यमुना अपना रोब दूसरों पर जताने के लिए गले में डाल धनवान के घर चली गई होगी ।

धनवान ने श्रीहरि से पूछा–"क्या तुमने यह माला यमुना को भेंट दी है?"

"जी हाँ!" श्रीहरि ने उत्तर दिया।

"तब तो तुमने ही मेरी बेटी के कंठ से खींच लिया है न?" धनी ने फिर पूछा।

श्रीहरि ने सारा वृत्तांत सुनाकर कहा– "मैं आज सुबह ही इस शहर में पहुँचा। चोर के हाथ से गिर गई होगी। मुझे रास्ते के किनारे पड़ी मिल गई है।"

धनी ने श्रीहरि पर शक किया था, इसके लिए उसने श्रीहरि से क्षमा मांगी और कहा–"हमें यह माला वापस मिल गई है, यही बहुत बड़ी बात है। वर पक्ष के लोगों के बीच अपमानित होते हम बच गये।" यों समझा कर धनवान ने ज़बर्दस्ती थोड़ा धन श्रीहरि को पुरस्कार के रूप में दिया।

वीरेन्द्र ने घर लौटने पर जान लिया कि उसकी कन्या ने श्रीहरि की थैली में से उस माला की चोरी की है, तब बोला– "बेटा, तुमने मेरी और मेरी लड़की की भी इज़्ज़त बचाई। तुम्हारी इस भलाई को मैं कभी भूल नहीं सकता। मैं अपनी कन्या का विवाह तुम्हारे साथ करना चाहता हूँ।"

इस पर श्रीहरि ने नम्र शब्दों में कहा– "आप कृपया मुझे क्षमा कीजिए! शायद आप मेरे भलेपन से प्रभावित हों, मगर मुझे आप की पुत्री की कुबुद्धि ज़रा भी पसंद न आई। गंगा भले ही खूबसूरत न हो, लेकिन उसकी सचाई और ईमानदारी मुझे पसंद आ गई। उसने यह जानते हुए भी कि माला मुझे लौटाने पर उसकी माँ उसे सताएंगी, फिर भी ईमानदारी के साथ वह माला लाकर मुझे सौंप दी है। आप की कन्या ने उसी माला की चोरी की है। आप ही विचार करके देखिए कि इन दोनों में कितना अंतर है! धनी से जो धन प्राप्त हुआ है, उससे कोई व्यापर करूँगा और गंगा स्वीकृति दे तो मैं उसीके साथ शादी करूँगा।"

वीरेन्द्र श्रीहरि की बातों की सचाई को भांप कर चुप रह गया। उस से कोहे उत्तर देते न बना।

कहावत की करामात

गोपू ने बारह साल तक एक गुरु के यहाँ शिक्षा पाई, लेकिन वह किसी भी शास्त्र का पंडित बन न पाया । हाँ, उसने जो भी कहावत या लोकोक्ति सुनी, उसे स्मरण रखकर उसके अर्थ को सही ढंग से समझ लिया । गुरु ने भांप लिया कि शिक्षा के प्रति गोपू के मन में कोई अभिरुचि नहीं है, इसलिए गुरु ने विशेष श्रम उठाकर गोपू को अनेक कहावतें और लोकोक्तियाँ सिखाईं ।

गोपू जब अपनी शिक्षा समाप्त कर बारह साल बाद घर लौटा तब उसके गाँववाले सब बहुत ही प्रसन्न हो उठे । मगर गोपू की समझ में न आया कि कौन-सा पेशा अपना लिया जाय! क्योंकि उसने किसी भी पेशे से संबंधित शिक्षा नहीं पाई थी । हाँ, उसने जो कुछ कहावतें और लोकोक्तियाँ संगृहीत कीं, उनके आधार पर लोगों को समय पर समुचित सलाहें दिया करता था । चूंकि वह कमाऊ न था, इस कारण गोपू के माँ-बाप दुखी थे ।

लक्ष्मणसिंह नामक एक किसान ने खूब फ़सल पैदाकर धन जोड़ लिया था । उसकी पत्नी ने गहने बनाने पर जोर दिया । ऐसी समस्याओं के उत्पन्न होने पर गाँववाले गोपू के विचार अवश्य जान लिया करते थे । इस कारण लक्ष्मणसिंह ने गोपू की सलाह माँगी ।

गोपू ने समझाया—" सुनिये, आप अपनी पत्नी की इच्छा की पूर्ति कीजिए! शरीर की शोभा बढ़ानेवाले आभूषण आफ़त के समय काम देते हैं ।"

लक्ष्मणसिंह ने गोपू की सलाह के मुताबिक़ अपनी पत्नी को गहने बनाकर दिये । इस घटना के दो महीने बाद लक्ष्मणसिंह के घर में आग लग गई । वे

राजेश वर्मा

प्राण बचाकर घर से बच निकले। सारे सामान भस्म हो गये, सिर्फ़ लक्ष्मणसिंह की पत्नी के बदन पर के गहने बच रहे। उन्हें बेचकर लक्ष्मणसिंह ने फिर से घर बनवा लिया।

गाँववालों को जब पता चला कि गोपू की सलाह ने लक्ष्मणसिंह की रक्षा की है। तब से गाँववाले सब वक़्त पर गोपू की सलाहें लेकर लाभ उठाते रहे। कुछ लोगों ने गोपू को पुरस्कार भी दिये, मगर उसकी आमदनी से बढ़कर उसका यश दूर तक फैल गया। एक बार उस देश के राजा के प्रति एक सामंत राजा ने विद्रोह किया। राजा थोड़ी सेना लेकर सामंत राजा पर हमला करने निकला और रास्ते में गोपू के गाँव में पड़ाव डाला। उस वक़्त राजा गाँव के प्रमुख व्यक्तियों के साथ गोपू से भी मिले। राजा ने अपने युद्ध के संबंध में गोपू की सलाह माँगी।

गोपू ने सलाह दी–"महाराज, कहा जाता है कि छोटे साँप को भी बड़ी लाठी से मारना हमेशा के लिए हितकर होता है। आप कृपया और थोड़ी सेना को साथ ले जाइयेगा।"

राजा ने थोड़ी और सेना भेजने को राजधानी में खबर भेज दी और अपनी सेना के साथ आगे बढ़ा। सामंत राजा ने अपने भेदियों द्वारा इस बात का पता लगाया कि राजा के साथ कितनी सेना है। तब उसने उस सेना का सामना करने के लिए आवश्यक फौज इकट्ठी की और तब हमला कर बैठा। उस लड़ाई में राजा हारते-हारते बच गया, अगर समय पर राजधानी से अतिरिक्त सेना न पहुँच जाती तो निश्चय ही राजा अपने सामंत राजा के हाथों में बुरी तरह से हार जाता।

राजा ने राजधानी में लौटते ही गोपू को बुला भेजा, अपने विजयोत्सव के अवसर पर सबसे अधिक गोपू की प्रशंसा की और उसका सत्कार किया। इसके बाद गोपू को राजा ने अपने एक सलाहकार के रूप में नियुक्त किया।
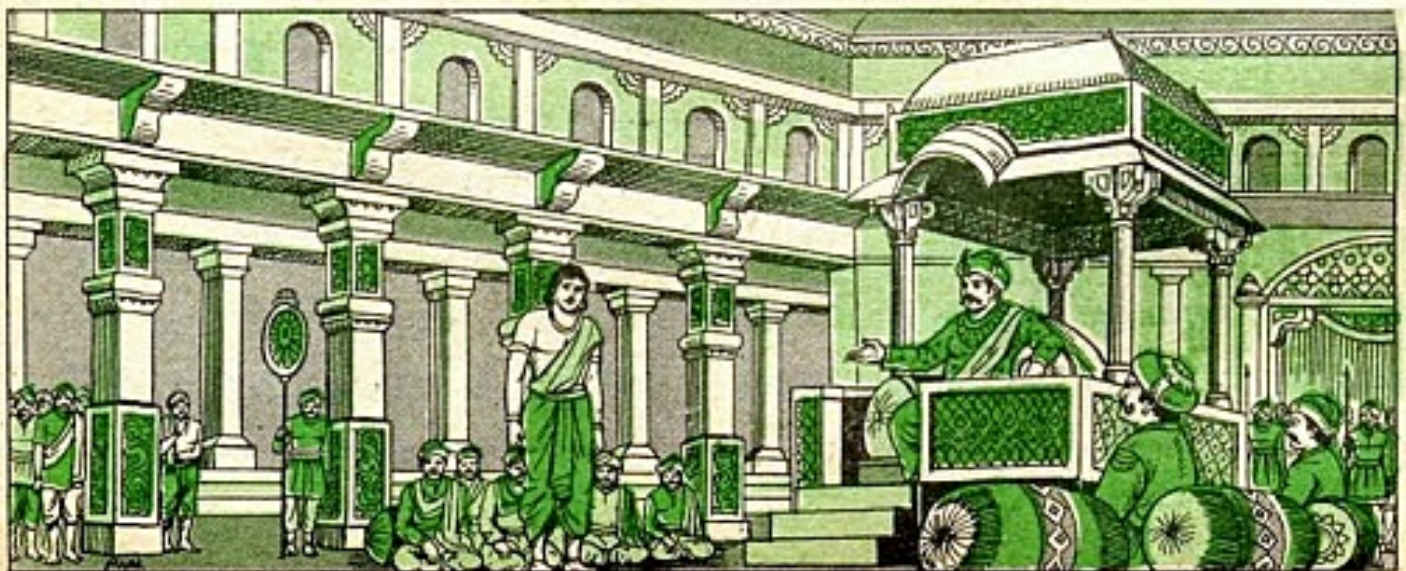
बेमतलब का काम

एक राजा अपने राज्य के एक पहाड़ी क्षेत्र में पर्यटन कर रहे थे, उन्हीं दिनों उनकी जन्मगांठ आ पड़ी। आस-पास के प्रमुख व्यक्तियों ने आकर राजा को उपहार सौंप दिये। एक जंगली उस वक्त तप करनेवाले एक मुनि के यहाँ से एक गठरी उपहार के रूप में ले आया और राजा के हाथ सौंप दी। उस गठरी में थोड़ी सी मिट्टी, एक मटके में पानी, थोड़े से पत्थर, घोड़े के बाल और एक नारियल था।

राजा एक थैले में सोने के सिक्के भर कर सपरिवार मुनि के पास गये और उन्हें समर्पित किया। मुनि ने थैले का स्पर्श करके बताया—"राजन, आप यह धन इस प्रदेश की उन्नति लगाइये।" यह समाचार सुनकर एक लोभी ने एक गठरी में सूखी लकड़ियाँ, बालू, सूखी घास और एक शराब की बोतल रख कर राजा को समर्पित किया।

राजा ने उस से पूछा—"इनका क्या मतलब है?" लोभी ने राजा से उल्टा सवाल पूछा—"आप ने मुनि के उपहार का मतलब नहीं पूछा है न राजन?"

उसका मतलब मैं समझ गया। मिट्टी और पानी भरपूर हो, पत्थरों से क़िले मजबूत किये जाय। अश्व सेना बढ़ाई जाय, और मैं प्रकट रूप में नारियल की भांति देखने में कठोर रहूँ मगर भीतर से मीठी गरी की भांति, नारियल के जल की तरह मेरा हृदय मधुर हो, यही आशीर्वाद मुनि ने मुझे दिया है। मगर तुम्हारे उपहार का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया।" राजा ने जवाब दिया।

इस पर उस व्यक्ति ने राजा के पैरों पर गिर कर क्षमा मांगी।
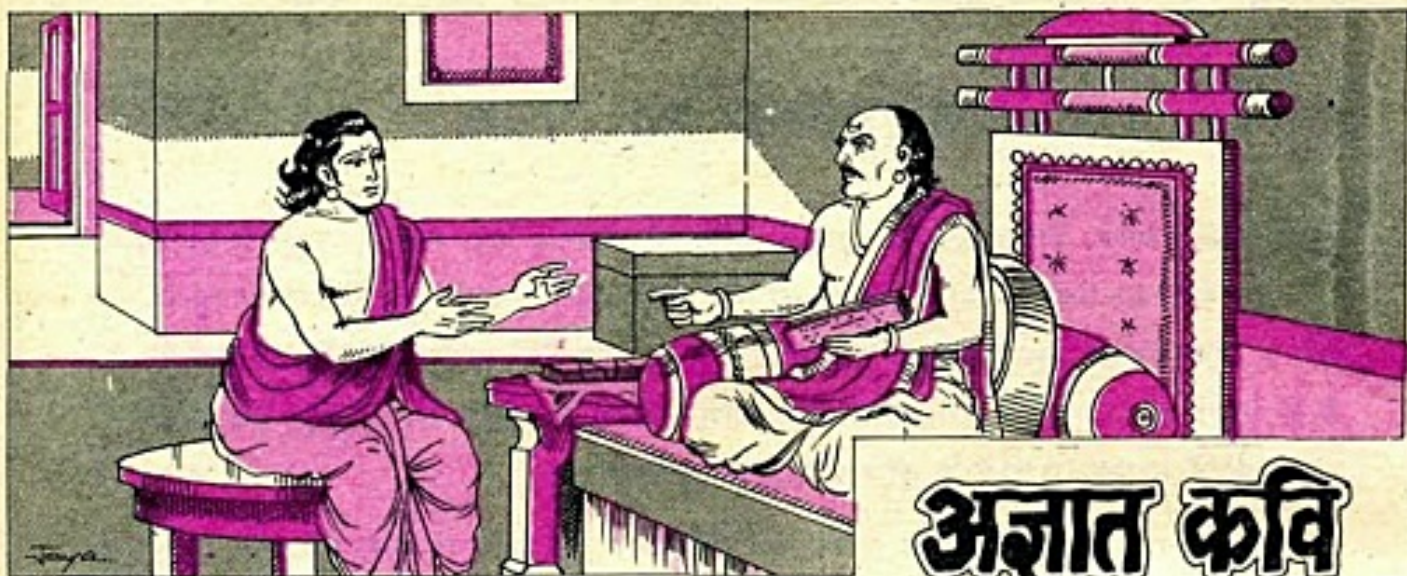
अज्ञात कवि

पुष्पपुर में राजशेखर नामक एक अज्ञात कवि था। वह जन्मजात कवि था, पर उसे स्वयं अपनी प्रतिभा का ज्ञान न था। उसने दस वर्ष तक निरंतर परिश्रम करके एक सरस काव्य की रचना की। इस संबंध में नागभूषण नामक एक प्रसिद्ध कवि का विचार जानने के ख्याल से उसके पास अपना काव्य ले गया।

राजशेखर ने नागभूषण से मिलकर बताया–"महाशय, मैंने इस काव्य की रचना की है। आप कृपया इस काव्य के लक्षण बताइये। यदि आप का प्रोत्साहन मिला तो मैं काव्य-रचना में और अधिक परिश्रम करना चाहता हूँ। वरना मैं काव्य-रचना करना त्यागकर कोई दूसरा धंधा कर लूंगा।"

नागभूषण ने राजशेखर के काव्य को उलट-पलटकर देखा, उसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही। यह बात कोई जानता तक न था कि राजशेखर साधारण कविता भी कर सकता है। ऐसी हालत में यह बात कौन सोच सकता है कि राजशेखर ऐसी अद्भुत कविता रच सकता है? इसलिए नागभूषण के मन में यह कुबुद्धि पैदा हुई कि उस काव्य की चोरी करे और उसकी सहायता से राजा के यहाँ से बहुत बड़ा पुरस्कार प्राप्त करे।

यों विचार करके नागभूषण ने कहा–"राजशेखरजी! मैं इसे ध्यान से पढ़कर अपना विचार बताऊँगा, आप कृपया दो सप्ताह बाद एक बार मुझ से मिल लें।" यों समझाकर नागभूषण ने राजशेखर को भेज दिया और उस काव्य की अपने हाथ से नक़ल की।

दो सप्ताह बाद राजशेखर ने प्रवेश करके कहा–"महानुभाव! अब तक आपने

नारायण परमार

मेरा काव्य पढ़ा होगा। मैं आप के विचार जानना चाहता हूँ।"

नागभूषण ने आश्चर्य का अभिनय करते हुए पूछा–"क्या कहा? काव्य है? वह कैसा काव्य है?"

"दो सप्ताह पहले मैं स्वयं आकर आप के हाथ जो काव्य दे गया था, जिसे मैंने दस वर्ष मेहनत करके रचा था। आप के विचार जानने के ख्याल से आप के यहाँ छोड़ गया था न, वही काव्य।" राजशेखर ने स्मरण दिलाया।

"आप तो सपना नहीं देख रहे हैं? आप ने मेरे हाथ कभी कोई काव्य नहीं दिया। आप कृपया ऐसी बेमतलब की बातें न करें।" नागभूषण ने धमकी दी।

"आप एक महान कवि होकर अन्य कवियों के साथ ऐसा अन्याय करे, यह आप के लिए शोभा नहीं देता।" राजशेखर ने दीनतापूर्ण स्वर में कहा।

"आप कहते हैं कि आप ने मेरे हाथ कोई काव्य सौंप दिया है। क्या उस वक़्त और कोई आप के साथ थे? अगर मैं झूठ बोलता हूँ तो वे लोग सत्य बता सकते हैं न?" नागभूषण ने कहा।

"उस वक़्त मेरे साथ कोई न थे।" राजशेखर ने बताया।

"तब तो आप की बात पर कौन यक़ीन करेगा?" नागभूषण ने कहा।

दूसरे दिन राजशेखर राजा रंगभूपाल के दरबार में पहुँचा और इस बात की
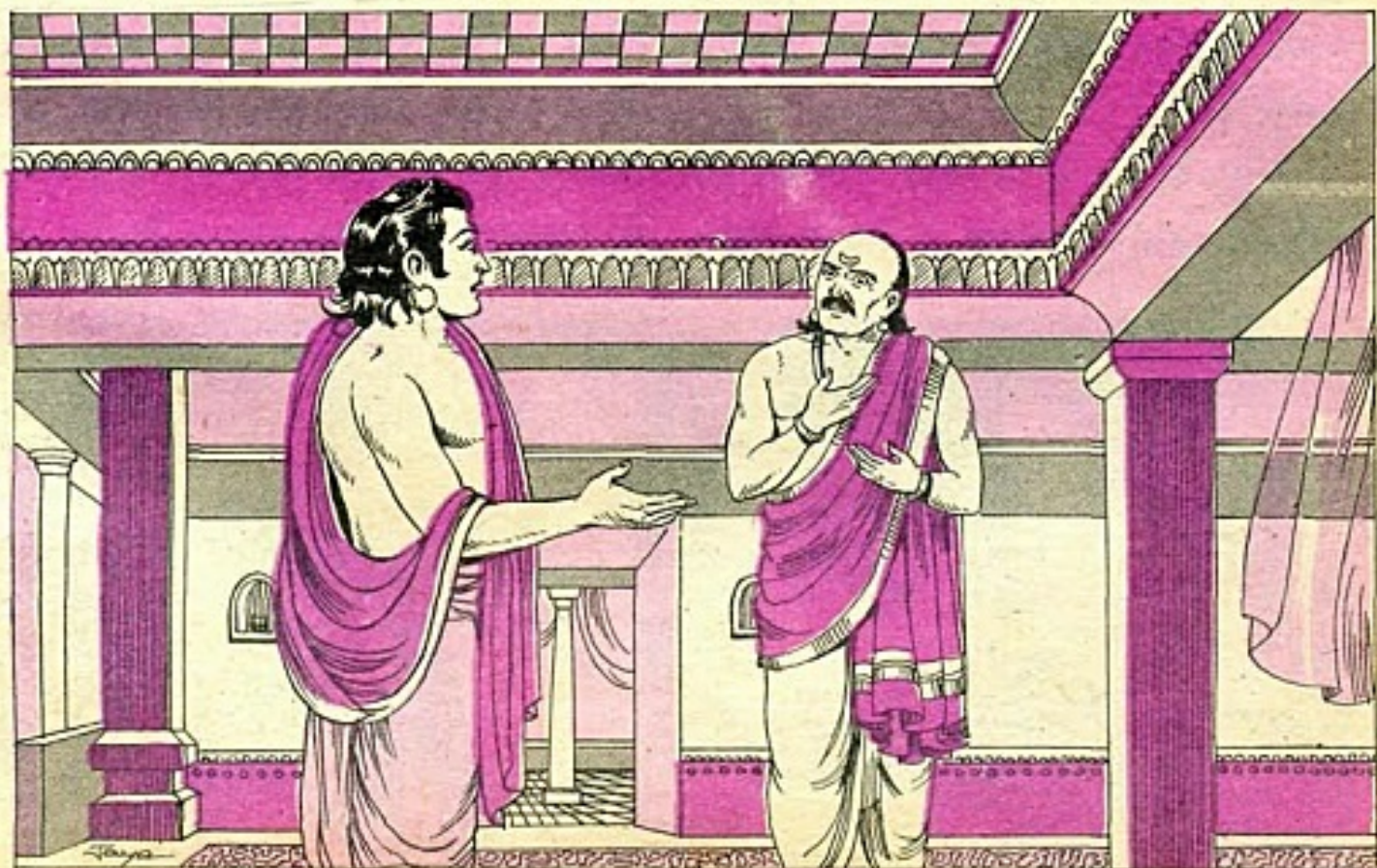
शिकायत की। राजा ने राजशेखर की बातें सावधानी से सुन लीं और नागभूषण को दरबार में बुला भेजा।

राजा रंगभूपाल ने काव्य की लिखावट की तुलना दोनों कवियों की लिखावट के साथ करके देखा। उस काव्य की लिखावट नागभूषण की लिखावट जैसी ही थी।

इस पर राजशेखर ने बताया–"महाराज, मेरा काव्य नागभूषण के घर में दो सप्ताह तक पड़ा रहा। इस बीच उन्होंने मेरे काव्य की नक़ल की होगी।"

राजा ने काव्य के पृष्ठ उलटकर देखा। वह काव्य श्रीरामचन्द्रजी को समर्पित किया गया था। इसे देख राजा ने कहा– "महा कवियो, मैं नहीं जानता कि इस मधुर काव्य की रचना आप दोनों में किसने की है! लेकिन जो कवि मुझे यह काव्य समर्पित करेंगे, मैं उसी का सम्मान करूँगा।"

राजा के मुँह से ये शब्द निकलने की देरी थी, बस, नागभूषण ने झट से कहा– "महाराज, मैं आप को अवश्य अपना काव्य समर्पित करूँगा। आप जैसे महाराजा के माँगने पर मैं कैसे इनकार कर सकता हूँ?"

इस पर राजा ने राजशेखर से पूछा– "कविवर, आप का क्या विचार है?"

"महाराज! क्षमा कीजिएगा। मैंने इस काव्य को अपने आराध्य देव श्रीरामचन्द्रजी को समर्पित किया है। पर इसे राजदरबार में पढ़ कर पुरस्कार पाने की भी मेरी कामना नहीं है।" राजशेखर ने स्पष्ट कहा।

यह उत्तर सुनकर राजा बहुत खुश हुआ और नागभूषण कवि को कारागार में बन्द करने का सिपाहियों को आदेश दिया।

नागभूषण घबरा गया, राजा के चरणों में गिर कर अपने अपराध को स्वीकार किया और क्षमा मांगी। राजा ने नागभूषण को डांटा, तब उसे क्षमा कर दिया। इस के बाद राजा ने भरी सभा में राजशेखर का भव्य सत्कार किया।

मंत्र की महिमा

एक गाँव में एक मांत्रिक था। वास्तव में वह कोई मंत्र-शक्तियाँ न रखता था, लेकिन वह थोड़ी सी तंत्र सबंधी प्रज्ञा रखता था। इसलिए भोले लोगों को दगा देकर, डरा कर वह अपनी जीविका चला लेता था।

उसी गाँव में प्रभाकर नामक एक युवक था। वह मंत्र-शक्तियों में विश्वास नहीं रखता था। किसी भी उपाय से सही, वह मांत्रिक के धोखे को प्रकट करना चाहता था।

एक दिन मांत्रिक प्रभाकर के यहाँ आया और पूछा कि उसकी जीविका चलाने के लिए छे महीने के लिए आवश्यक चावल, दाल, तेल आदि सामग्री दे।

मांत्रिक भीख मांग रहा था, पर उसके मांगने का ढंग, दर्प और ठाठ देख प्रभाकर को गुस्सा आया, उसने गुस्से में आकर कहा–"छे महीने के लिए क्या, एक जून का खर्चा भी मैं तुम्हें नहीं दूँगा। अरे दुष्ट! तुम भोले लोंगों को डरा-धमकाकर भैंसे की भांति खाते जा रहे हो! यहाँ से चुपचाप चले जाओ, वरना तुम्हारी गर्दन पकड़कर बाहर खदेड़ दूँगा।"

मांत्रिक जरा भी विचलित नहीं हुआ, उसने धमकी देकर कहा–"तुम मेरी शक्तियाँ नहीं जानते। देखते रह जाओ, कल इस वक़्त तक तुम्हारा क्या बिगाड़ सकता हूँ?" यों धमकी दे अपनी लाठी टेकते जल्दी डग भरते मांत्रिक वहाँ से चला गया।

प्रभाकर कई दिनों से जिस मौक़े के इंतजार में था, वह मौक़ा अब उसे हाथ लगा था। उसने अपने मित्रों से मिलकर मांत्रिक की दगाबाजी का भण्डा फोड़ने का उपाय बताया। उसके दोस्त

इस योजना में मदद देने को तुरंत तैयार हो गये।

दूसरे दिन सवेरे प्रभाकर थोड़ी देर तक हाथ-पैर मारते छटपटाता रहा, दो बार कै कर ली, तब शिथिल हो गिर पड़ा। अड़ोस-पड़ोस वालों ने आकर पूछा—"बात क्या है?" जल्दी बतला दो, कोई उपाय करेंगे! प्रभाकर को क्या हो गया है?" तब प्रभाकर के मित्रों ने बताया—"यह सब मांत्रिक की करामात है। वही आकर इसे ठीक कर सकता है।"

गाँव के प्रमुख लोगों ने जाकर मांत्रिक को डांट कर पूछा—"तुमने ही प्रभाकर पर कोई मंत्र फूंक दिया है। चलो, जल्दी जाकर उसे ठीक कर दो।"

मांत्रिक ने तैश में आकर कहा—"जो जैसी करनी करता है, वह तैसा भोगता है। बीच में मैं क्या कर सकता हूँ?"

"तब तो क्या तुमने प्रभाकर पर जादू नहीं किया? तुमने कल प्रभाकर को क्यों धमकी दी कि उसे अपनी करामात दिखाओगे?" यों कहकर प्रभाकर के मित्र मांत्रिक को बुरी तरह से पीटने लगे।

मांत्रिक डर गया। उनके पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ाने लगा—"भाइयो, मैं कोई मंत्र-तंत्र नहीं जानता हूँ। सच बताता हूँ। प्रभाकर को डराने के लिए मैंने कुछ बक दिया है। मेहर्बानी करके मुझे छोड़ दीजिए।"

इस बीच प्रभाकर वहाँ आ पहुँचा और बोला—"यह बात सच है कि तुम कोई मंत्र-तंत्र नहीं जानते और तुम्हारे हाथ में कोई शक्ति भी नहीं है। मगर इसका बहाना बनाकर तुम लोगों को दगा देते हो! इसलिए तुम्हें इस प्रकार सबक़ सिखाना चाहा। आइंदा तुम कभी मंत्र-तंत्र की बात करोगे तो तुम्हारी हड्डी-पसली तोड़ देंगे। समझें?" यों प्रभाकर ने उसे चेतावनी दी।

यह ख़बर कुछ ही मिनटों में अड़ोस-पड़ोस के गाँवों में फैल गई। इसके बाद फिर किसी ने मांत्रिक की परवाह नहीं की।

मणिपुर राज्य का शासक मणिध्वज न केवल पराक्रमी था बल्कि बहुत बड़ा शिव भक्त भी था। उसने सौ बार होमकुंड में अपने शरीर को जला लिया था और दस बार अपना सिर काट लिया था। इस प्रकार की उग्र पूजाओं के द्वारा उसने शिवजी को प्रत्यक्ष कर लिया।

मणिध्वज की कामना मात्र से शिवजी का त्रिशूल आकर शत्रु का संहार करता है। उसे पाशुपत अस्त्र भी प्राप्त था। शिवजी ने उसे यहाँ तक वरदान दिया था कि उसकी मांग पर स्वयं शिवजी प्रत्यक्ष हो शत्रु के साथ युद्ध करेंगे। इसलिए उसे इस बात का घमण्ड था कि उसे किसी के द्वारा पराजय न होगी; सदा शिवजी ही उसके रक्षक के रूप में उपस्थित रहेंगे। अतः वह निरंकुशतापूर्वक शासन करने लगा।

साथ ही मणिध्वज ने शिवाजी को छोड़ अन्य देवताओं तथा धर्मों के अनुयायियों को अपने देश से भगा दिया। शिवालयों को छोड़ अन्य मंदिरों को ध्वस्त कराया। इस कारण मणिध्वज के द्वारा तंग आये हुए लोग शारणार्थी बन कर अयोध्या पहुँचे और रामचन्द्रजी से शिकायत की। रामचन्द्रजी ने उन्हें शरण देकर अभय प्रदान किया। उन्हें बताया कि मणिध्वज के अहंकार का पतन होनेवाला है और उन लोगों की तक़लीफ़ें शीघ्र ही दूर होनेवाली हैं। तब तक वे लोग उनके राज्य में

४४. अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति

सुखपूर्वक अपने दिन काटे। सभी देशों को पद दलित करते श्री रामचन्द्रजी का यज्ञाश्व जब मणिध्वज के राज्य की सीमा पर पहुँचा तभी मणिध्वज ने उसे पकड़कर अपनी राजधानी मणिपुर की अश्वशाला में बन्दी बनाया।

लक्ष्मण ने अपने दूत द्वारा मणिध्वज के पास इस बात का संदेशा भेजा कि वह यज्ञ के अश्व को मुक्त करके श्रीरामचन्द्रजी के प्रति मैत्री भाव प्रकट करे। पर मणिध्वज ने दूत की पीठ पर तप्त त्रिशूल का निशाना लगाया, उसके सिर पर भस्म उड़ेल कर कहला भेजा— "तुम जाकर कह दो, जिस रामचन्द्र ने रावण आदि शिव भक्तों का वध किया, उसे मैं शिवजी को प्रसन्न करने के लिए भैरव मूर्ति के सामने बलि देने को लालयित हूँ। चाहे करोड़ों रामचन्द्र भी आ जावे, मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते।"

अब तक किसी भी देश में लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का किसी ने सामना नहीं किया था, पर अब उन्हें मणिध्वज के साथ युद्ध अनिवार्य हो गया। भरत ने पांचजन्य जैसा शंख बजाया, जिससे दिशाएँ गूँज उठीं। दूसरी ओर शत्रुघ्न सुदर्शन चक्र जैसे टूट पड़े, तीसरी दिशा में लक्ष्मण अपने सहस्त्र फण फैला कर फुत्कारनेवाले शेषनाग की भांति आक्रमण कर उठे, उनके हमलों के सामने न टिक पाने की हालत में मणिध्वज ने शिवजी के त्रिशूल को पुकारा।

फिर क्या था, मणिध्वज के पूजा-मंदिर में से विद्युत् की भांति गरजते त्रिशूल लक्ष्मण की ओर तीव्र गति से बढ़ा। ठीक उसी वक्त हनुमान लक्ष्मण के सामने आकर उतरे, उन्होंने लक्ष्मण का संहार करने आनेवाले त्रिशूल को बायें हाथ से मरोड़कर इस तरह कसकर पकड़ लिया, जैसे हाथी अपनी सूंड से ईख को पकड़ लेता है। तब हनुमान शिवजी की भांति गंभीर आकृति में खड़े हुए।

मणिध्वज यह सोचकर संभ्रम में आ गया कि शिवजी ही स्वयं प्रत्यक्ष हुए हैं, और हाथ जोड़कर वह प्रणाम करने को हुआ, इस पर हनुमान अट्टहास कर उठे– "अरे शिवजी के महा भक्त! में शिवजी नहीं हूँ! एक वानर हूँ! हनुमान हूँ! रामचन्द्रजी का सेवक हूँ!" यों कहकर गदा उठाये उस पर आक्रमण कर उठे।

मणिध्वज उस वार से बचकर दूर भाग गया, हनुमान को देख चकित रह गया। हनुमान की आँखें अग्नि-गोल जैसे चमक रही थीं। वे एक हाथ से त्रिशूल को पृथ्वी पर टिकाकर अपर परमेश्वर की भांति खड़े थे। मणिध्वज ने सोचा कि अब उसकी मौत निश्चित है। डर के मारे उस ने साहस करके पाशुपतास्त्र का स्मरण किया, मंत्र जाप करके धनुष पर चढ़ाकर छोड़ दिया।

पाशुपतास्त्र की गर्मी से वह सारा प्रदेश खौल उठा। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न तथा उनकी सेना भी धरती पर गिरकर मूर्छित हो गई। उस समय हनुमान राम-नाम जाप करते छाती पुला कर अस्त्र के सामने जा खड़े हुए। पाशुपतास्त्र हनुमान के वक्ष का स्पर्श करके झाड़ू के तिनके की भांति टूट कर हनुमान के अन्दर विलीन हो गया। हनुमान ने मणिध्वज के रथ के टुकड़े-टुकड़े कर दिये, गदा का प्रहार खा कर मरा नहीं, दौड़ते वह अपनी पूजा के मंदिर में पहुँचा। शिवलिंग पर सर

टकराते चिल्ला उठा–"हर हर महादेव! शीघ्र आइए!"

उस वक्त शिवलिंग के भीतर से ये शब्द सुनाई दिये–"मणिध्वज! बात क्या है? तुमने तो अभी अभी बताया था कि एक करोड़ रामचन्द्र भी आवें तो तुम उनका संहार करोगे! पर क्या तुम एक रामचन्द्रजी के सेवक का सामना न कर सकोगे? तुम इसी वक्त जाकर युद्ध करो। मैं तुम्हारा साथ दूंगा।"

अपने वरदान के मुताबिक़ शिवजी नंदी वाहन पर सवार हो युद्ध क्षेत्र में मणिध्वज के आगे प्रत्यक्ष हुए। इस पर हनुमान शिवजी से बोले–"आप ईश्वर हो सकते हैं, पर मैं आप से डरता नहीं! अपनी रक्षा कीजिए!" यों कड़क कर हनुमान शिवजी पर टूट पड़े। इस पर नंदी भड़क उठा, शिवजी को नीचे गिरा कर भाग गया।

शिवजी धूल झाड़ कर उठ खडे हुए, तब हनुमान से बोले–"तुमने मेरे त्रिशूल को ग्रस लिया, पाशुपतास्त्र को अपने भीतर लीन कर लिया! यह कार्य केवल भगवान विष्णु के लिए ही संभव है। क्या तुम विष्णु हो? या विष्णु भक्त हो? आखिर तुम कौन हो?"

"आप देवताओं के साथ मेरा कोई निमित्त नहीं है! मानव रामचन्द्रजी का मैं एक विश्वासपात्र व्यक्ति हूँ! बानर बना मेरे लिए वही मानव भगवान है! बुद्धि भी वानर जैसे चंचल होती है! मैं ने एकाग्रतापूर्वक अपनी बुद्धि को एक श्रेष्ठ मानव पर केन्द्रित कर अपार मनोबल, साहस एवं पराक्रम प्राप्त कर लिया है। चाहे आप इसे भक्ति मानें या लक्ष्य की साधना। जगत के कल्याण के हेतु मेरे विश्वसनीय मानव जो अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं, उसे कोई भी भक्ति या शक्ति रोक नहीं सकती। अपने को भक्त मान कर मणिध्वज जैसे लोग कैसा अत्याचार कर रहे हैं? ऐसे अहंकारी तथा स्वार्थियों का साथ देने वाले देवताओं की क्या जरूरत

है?" इन शब्दों के साथ हनुमान गरज उठे। ये बातें सुन शिवजीहंस पड़े; पर दूसरे ही क्षण क्रोधित हो बोले–"देखो, मैं अपना तीसरा नेत्र खोल देता हूँ। अपने को बचा लो।"

"शीघ्र ही खोल दीजिए। अपने भक्त की आँखें खुलवा दीजिए!" हनुमान ने कहा।

शिवजी ने ज्यों ही अपना तीसरा नेत्र खोला त्यों ही धक् से प्रलयकालीन अग्नि हनुमान की ओर बढ़ चली। हनुमान ने अपना दायाँ हाथ फैला कर उस अग्नि को अपनी अंजुली में भर दी–"रामार्पणमस्तु!" कहते उसे अपने मुंह में डाल एक ही घूंट में इस तरह निगल डाली, जैसे शिवजी ने हालाहल का पान किया था।

इसके बाद शिवजी ने मणिध्वज से कहा–"देख रहे हो न! अब मैं कुछ नहीं कर सकता। हनुमान मेरा आत्म स्वरूप ही है। मेरे अंश के द्वारा अवतरित उसके भीतर मेरी समस्त शक्तियाँ लीन हो गई हैं! तुम समझने की कोशिश करो, भक्ति के माने क्या होता है?" यों समझा कर शिवजी अंतर्धान हुए।

इस बीच हनुमान उड़ कर द्रोणगिरि पहुँचे, संजीवकरणी नामक औषध उखाड़ कर ले आये, उसे सुंघा कर मूर्छित अवस्था

में स्थित लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न तथा सेना को भी जिलाया। इस पर मणिध्वज की आँखें खुलीं। उसने वीर हनुमान के सामने घुटने टेककर प्रणाम किया।

हनुमान ने मणिध्वज को समझाया– "मणिध्वज! समझ गये हो न कि स्वार्थ के कारण तुम्हारी भक्ति कैसी क्षुद्र हो गई है? स्वार्थ के वशीभूत हो ईश्वर को अपने सेवक के रूप में काम में लाना भक्ति नहीं कहलाता। ईश्वर का संकल्प है–प्राणी मात्र सुखी हो, इसकी पूर्ति करना ही भक्ति है। मगर तुम जैसे लोगों के द्वारा देवताओं की प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती है। अपने को भक्त कहलाने वाले स्वार्थी और

घमण्ड़ियों से घृणा करके अच्छे लोग नास्तिक बनते जा रहे हैं। इस समय तुम्हारा अज्ञान दूर हो गया है, इसलिए आज से तुम अपनी ईर्ष्या की भावना को त्याग कर यह समझने की कोशिश करो कि समस्त प्राणियों में ईश्वर समान रूप से वास करते हैं, समस्त प्रजा का सुख ही जीवन का लक्ष्य मानकर शासन करो।"

इस पर मणिध्वज बोला–"महात्मा! गर्व के आधिक्य के कारण अपमानित होने पर ही ज्ञान के नेत्र खुल जाते हैं। अब मैं समझ गया हूँ कि मेरे गर्व को बढ़ाने के लिए ही शिवजी ने मेरे वांछित वर प्रदान किये हैं। अहंकार में आकर मैंने यज्ञाश्व को बन्दी बनाया, जिसका फल बड़ा ही उत्तम निकला। मेरा ज्ञानोदय भी हो गया। मैं मानता हूँ कि यह सब रामचन्द्रजी की ही कृपा है। मैं रामचन्द्रजी की सेवा में पहुँचकर उनसे अपनी करनी के लिए क्षमा माँग लूँगा और उनसे निवेदन करूंगा कि वे मुझे अपने बंधु-समूह में सम्मिलित कर लें।" यों कहकर विनम्रता पूर्वक मणिध्वज ने यज्ञ के अश्व को लाकर लक्ष्मण के हाथ सौंप दिया।

इसके बाद यज्ञाश्व को स्वेच्छापूर्वक छोड़कर सब लोग उसके पीछे चल पड़े। मणिध्वज ने आदर सहित उन्हें विदा किया।

मणिध्वज के शुभा और शोभा नामक दो सुंदर जुड़वीं कन्याएँ थीं। उन्हें साथ ले कर मणिध्वज अयोध्या पहुँचा और अपने अपराध को क्षमा करने की प्रार्थना की। रामचन्दजी ने मणिध्वज को अपने मित्र के रूप में माना। मणिध्वज ने रामचन्द्रजी से प्रार्थना की कि उसकी कन्याओं को लव-कुश की वधुओं के रूप में स्वीकार करके रघुवंश के साथ उस का रिश्ता जोड़ने की कृपा करें। रामचन्द्रजी ने सहर्ष स्वीकृति दी और अश्वमेध यज्ञ के उपरांत विवाह संपन्न करने का वचन दिया। तब मणिध्वज उन सब लोगों को अपने साथ ले गया जिन्हें उसने अपने

राज्य से निकाल दिया था, तब से वह जनता का हित ही शिव की पूजा तथा जनता की सेवा भक्ति मानकर शासम करने लगा ।

इसके बाद रामचन्द्रजी का यज्ञाश्व पूरब से दक्षिण तथा पश्चिम के सभी देशों में स्वेच्छा पूर्वक घूम कर अयोध्या को लौट आया । अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति पर किस्किधा से सुग्रीव आदि वानर, लंका से विभीषण, मणिपुर से मणिध्वज तथा अन्य अनेक देशों से कई राजा उत्तम उपहार लेकर आ पहुँचे । विभीषण उत्तम जाति के मोती और मूँगे गाड़ियों में भर कर ले आया । सुग्रीव रत्न और सोना ले आया । मणिध्वज मरकत, माणिक और रेशमी वस्त्र ले आया । देश-विदेश के राजाओं के द्वारा लाये गये चांदी और सोने से कोशागार भर गया और मैंदान में उनके ढेर लगाये गये ।

उधर लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न समस्त देशों में अभूत पूर्व स्वागत एवं राज-सम्मान प्राप्त कर विजयपूर्वक अपनी सेनाओं के साथ अयोध्या पहुँचे । उनके पीछे हनुमान भरद्वाज, गौतम, अत्रि, अगत्स्य इत्यादि ऋषियों के साथ आ पहुँचे । रामचन्द्रजी के शस्त्र-गुरू विश्वमित्र का विशेष रूप से स्वागत करके ले आये ।

अश्वमेध यज्ञ बेरोकटोक वैभव पूवक संपन्न हुआ । रामचन्द्रजी ने प्रत्येक घर धन और धान्य भिजवा दिया । राज्य की नारियों में हीरे, जवाहरात बांट दिये गये । जनता के हित के कार्य करनेवाले लोगों का पुरस्कारों के साथ सम्मान किया गया ।

इसके बाद सभी लोग मणिपुर राज्य में मणिध्वज का स्वागत पाकर चले गये । मणिपुर में कुश का शुभा के साथ तथा लव का शोभा के साथ वैभवपूर्वक विवाह संपन्न हुआ । विवाह के अवसर पर मणिध्वज ने अपना सारा राज्य लव-कुश को उपहार स्वरूप समर्पित किया और थोड़े दिन बाद तपस्या करने के लिए वह अरण्य में चला गया ।

जो राजा राक्षस बना

हजारों साल पहले सौदास नामक राजा अरण्य मार्ग से जा रहा था, तब शक्ति नामक एक युवा तपस्वी उसके सामने आया।

"मैं राजा हूँ। मुझे रास्ता क्यों नहीं देते?" शक्ति ने पूछा। राजा ने क्रोध में आकर तपस्वी को पीटा।

शक्ति ने कुपित हो सौदास को शाप दे दिया–"तुम राजा नहीं, बल्कि एक साधारण मानव के रूप में भी रहने योग्य नहीं हो! तुम राक्षस बन जाओ।"

पेड़ पर बैठे एक ब्रह्म राक्षसी ने तपस्वी का वह शाप सुना, उसने राजा के भीतर प्रवेश किया। राजा उसको रोक नहीं पाया।

इसके बाद राजा भयभीत हो भागने लगा। उसका चेहरा विकृत रूप में बदल गया। जब तक वह जंगल के बीच एक कुटी के पास पहुंचा, तब तक वह पूर्ण रूप से राक्षस बन गया।

वह कुटी और किसी की न थी, बल्कि शक्ति की ही थी। राक्षस के रूप में परिवर्तित सौदास ने शक्ति को पकड़कर निगल डाला।

राक्षस का क्रोध यहाँ तक शांत न हुआ। जंगल में शक्ति के सौ भाई भी थे। सौदास ने उन सब को खोज-ढूंढकर निगल डाला।

शक्ति और उसके भाई वशिष्ठ के पुत्र थे। वशिष्ठ ने जब अपने पुत्रों की दुर्दशा का समाचार सुना, तब दुखी हो आत्महत्या करना चाहा।

वशिष्ठ अपना प्राण त्याग करने के हेतु एक नदी में कूद पड़ा। तुरंत नदी सौ शाखाओं में बंट गई। वशिष्ठ के डूबने लायक पानी भी उसने रहने न दिया। उस नदी का नाम "शतद्रु" है।

इसके बाद वशिष्ठ एक और नदी के निकट गया। तैरने से बचने के लिए अपने हाथ बांधकर उसमें कूद पड़ा। नदी देवी ने उसके बंधन खोलकर उसे नदी किनारे ढकेल दिया। उस नदी का नाम "विपाशा" पड़ गया।

वशिष्ठ जब अपने निवास को लौटने लगा, तब उसके पीछे कोई वेद पठन करते सुन उसने घूमकर देखा। उसके पीछे शक्ति की पत्नी चली आ रही थी। उसका गर्भस्थ शिशु वेद पाठ कर रहा था। अपने वंश की बेल को देख वशिष्ठ बड़ा प्रसन्न हुआ।
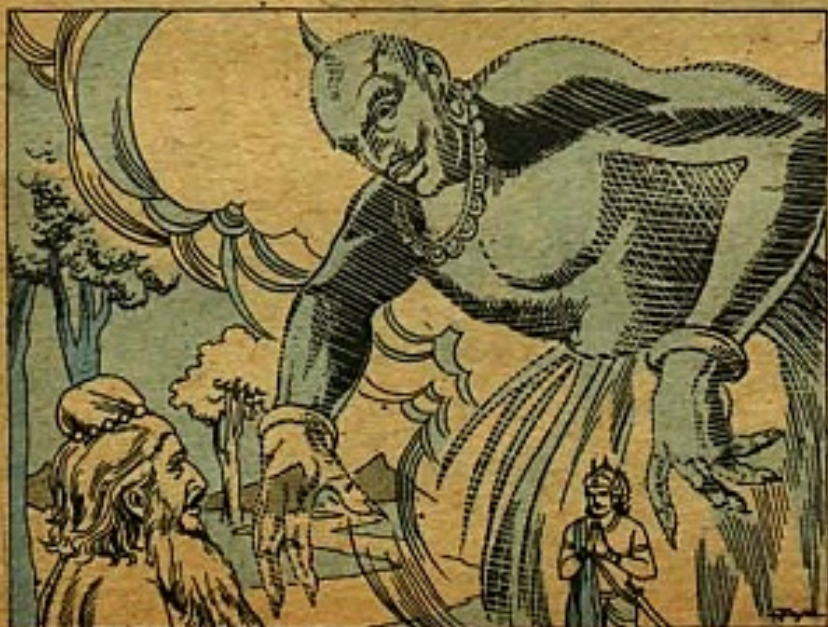
इसके बाद जल्द ही राक्षस वशिष्ठ को ही निगलने आया। वशिष्ठ चाहे तो उसका अंत कर सकता था, मगर उसने अपने कमण्डलु का तिलोदक छिड़ककर राक्षस को पुनः सौदास के रूप मेंबदल डाला।

कहानी शीर्षक-प्रतियोगिता

कहानी का सुंदर शीर्षक देकर रु. २५ जीतिए!

?

सवेरा होने को था, पर अभी तक लोगों का आना-जाना चालू न था। एक सन्यासी समाधिस्थ हो रास्ते को रोके पड़ा हुआ था।

उस वक्त एक चोर उधर से निकला। सन्यासी को देख उसने चोर समझा और कहा—"अरे कमबख्त! रात भर चोरी करोगे तो इसी तरह शरीर की सुध खोकर सो जाओगे, किसी के देखने के पहले अपने घर चले जाओ।" यों चेतावनी दे चोर चला गया।

थोड़ी देर बाद एक शराबी उधर से गुजरा, उसने डांटकर कहा—"अबे, शराब पी ली तो कोई बात नहीं, मगर कोई इतना पी जाता है जिससे रास्ते में लुढ़ककर घर तक न पहुँच सके?" वह भी चला गया।

इसके बाद एक सन्यासी आ पहुँचा। उसने पहचान लिया कि कोई सन्यासी समाधि लगाये हुए हैं, वह उसके कान में कोई प्रणव मंत्र जपकर उसके पैर दबाने लगा।

★ ★ ★

उपर्युक्त कहानी के लिए बढ़िया शीर्षक कार्ड पर लिखकर, निम्न लिखित पते पर भेजें—"कहानी शीर्षक-प्रतियोगिता", चन्दामामा २ & ३, आर्काट रोड़, मद्रास-६०० ०२६

कार्ड हमें जून १० तक प्राप्त हों और उसमें फोटो-परिचयोक्तियाँ न हों। इसके परिणाम चन्दामामा के अगस्त '७८ के अंक में घोषित किये जायेंगे।

अप्रैल मास की प्रतियोगिता का परिणाम: "सिलाई की कमाई"

पुरस्कृत व्यक्ति: श्री हरिकल्याण मोदी, C/o भीमराज मोदी, बिरला कॉलोनी, भिवानी

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २५)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ अगस्त १९७८ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

P. Sundaram

Devidas Kasbekar

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्दों की हों और परस्पर संबंधित हों।

★ जून १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए, उसके बाद प्राप्त होनेवाली परिचयोक्तियों पर विचार नहीं किया जाएगा।

★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) २५ रु. का पुरस्कार दिया जाएगा।

★ दोनों परिचयोक्तियाँ कार्ड पर लिखकर (परिचयोक्तियों से भिन्न बातें उसमें न लिखें) निम्नलिखित पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

अप्रैल के फोटो-परिणाम

प्रथम फोटो : आज का दुलारा!

द्वितीय फोटो : कल का सहारा!!

प्रेषक: संजय व्यास, १२ जी/एफ. जैन लाइन डी. सी. एम. किशनगंज, दिल्ली - ७

पुरस्कार की राशि रु. २५ इस महीने के अंत तक भेजी जाएगी।

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 2 & 3, Arcot Road, Madras 600 026 : Controlling Editor : NAGI REDDI

'गुड़िया से प्यारा गोल्ड स्पॉट हमारा'

गोल्ड स्पॉट-
स्वाद की गवाही, मुस्कुराहट बन के आई

Creative Unit 3496 Hin.

फलों के स्वादवाली गोलियां

५ फलों के स्वाद— रासबेरी, अनन्नास, नींबू, नारंगी व मोसंबी.

everest/871/PP-hn